श्री नन्दलाल-जन्म

[८३८]

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् दैवज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥*

श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १ श्लोक

छप्पय

जाइ सुनन्दा कह्यो—जन्यौ भामीने लाला ।
छिनमहँ फैली बात सुनत दौरी ब्रजबाला ॥
नन्द अकबके भये देह की दशा भुलानी ।
छायो नयननि नीर पुलक तनु गद्गद बानी ॥
आवे गावत गीत सब, अति उमङ्गमहँ गोपगन ।
पकरि नचावे नन्दहूँ, डगमग डगमग होहि तन ॥

किसी वस्तु में सुख नही, घटना में सुख नही, सच पूछा जाय तो प्रतीक्षा मे सुख है। यो सामान्यतया शास्त्रकारो ने अनुकूल वदना को सुख कहा है, प्रतिकूल वेदना को दु ख कहा है। किन्तु वैसे ही सामान्य रीति से बिना प्रयत्न के बिना प्रतीक्षा के हमे

---

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—'राजन ! जब महामना नन्द जी ने सुना मेरे आत्मज हुआ है, तो उनके मन मे बडा आह्लाद उत्पन्न हुआ। उन्होने ज्योतिष विद्या विशारद ब्राह्मणों को बुलाया, फिर स्वय स्नान करके वस्त्रो को धारण किया।'

इष्ट वस्तु प्राप्त हो जाय, तो उसमे कोई विशेषता प्रतीत नही होती। सामान्य सुख होता है, उसका भी अनुभव नही होता। यद्यपि जल को जीवन कहा है। प्यास न हो तो कितना भी सुन्दर जल रखा रहे, हमारे लिये उसका कोई विशेष महत्व नही। प्यास लगने पर उसके सुख का अनुभव होगा। प्यास जितनी ही अधिक तीव्र होगी, सुखानुभूति उतनी ही अधिक होगी। पपीहा के लिये वही स्वाति बूंद अमृत के सदृश है, क्योकि उसने बहुत दिनो तक प्रतीक्षा की है। हम नित्य-प्रति भूख लगने के पूर्व ही भाँति-भाँति के स्वादिष्ट पदार्थ आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं, उनमे रस की स्फूर्ति नही होती, पदार्थ मे स्वाद का अनुभव नही होता। वही अन्न महीनो के लघन के पश्चात् अत्युत्कट भूख मे दिया जाय, तो दाल के पानी मे भी वह स्वाद आता है, जो कहा नही जाता। कुलाङ्गना पत्नी नित्य ही अपने पति से मिलती है, सामान्य सी-घटना प्रतीत होती है, किन्तु चिर प्रतीक्षा के अनन्तर जब वह परदेश से लौटता है, वह मिलन एक अत्यन्त सुखद प्रसग है। सामान्य-तया जिनके घर मे खाने पीने का भी अभाव है, उनके यहाँ प्रति वर्ष एक पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो उनके लिये सामान्य सी घटना है। वैसे पुत्र का उत्पन्न होना पिता-माता तथा परिवार वालों के लिये सुखद घटना है किन्तु आवश्यकता का अनुभव न होने पर भी जो पुत्र हो जाता है, वह किसी अश मे दु ख और चिन्ता का ही कारण होता है। जिसने कभी पुत्र का मुख न देखा हो, जो क्षण-क्षण पल-पल पर पुत्र मुख देखने के लिये लालायित हो रहा हो। माता-पिता तथा परिजन ही नहो पूरा प्रात जिसकी प्रतीक्षा मे व्याकुल हो रहा हो, उसके उत्पन्न होने पर कितनी प्रसन्नता होगी यह कहने की बात नही अनुभव करने की बात है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नन्दरानी के भवन में प्रसूति के लिये जितने उपयोगी सामान थे, वे सब जुटाये गये। गोपियाँ नन्दरानी का मन बहलाने के लिये ढालक मँजीरा बजाकर गीत

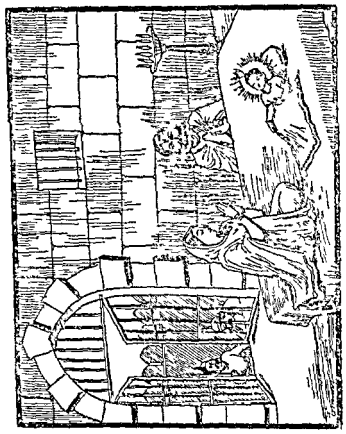

गाने लगी। गीत गाते-गाते सबकी सब सो गयी। स्वयं यशोदा मैया को भी योगमाया के प्रभाव से नींद आ गयी। उसी नींद मे उसने कुछ पैदा किया। छोरा किया या छोरी, एक बालक जना या दो ये विवाद के विषय हैं। इस विषय पर सदा

भेद बना रहेगा, विवाद होता रहेगा। हमे इस विवाद में पडना नही छोरी हो तो भली छोरा हो तो भला। एक हो तो अच्छे दो हुए हो तो उससे भी अच्छे। ये सब बातें चोरी छिपे गुप चुप की हैं। अब जो सबके सम्मुख प्रत्यक्ष बात हुई, उसे ही आप सबके सम्मुख कहता हूँ।

सबसे पहिले सुनन्दा बुआ की आँखे खुली। उन्होने देखा सूतिका-गृह के दीपक सभी बुझे हुए हैं। भाभी के शयन स्थान मे एक नीलमणि के समान तेजपुन्ज पडा हुआ है, उसकी अनिर्वचनीय आभा से समस्त सूतिका-गृह अलौकिक हो रहा है। बूआ पहिले तो समझ न सकी यह क्या है। प्रथम उन्होने सोचा, यह कोई प्रस्फुटित नील कमल है, किन्तु नील कमल तो इतना बडा होता नही, वह तो जल मे खिलता है, सम्भव है, दाई ने नील मणियो का पुन्ज बनाकर किसी प्रयोजन से रख दिया हो, किन्तु यह तो पुज नही, इसके तो कर चरण आदि अग दिखाई देते हैं। सम्भव है अजन के चूर्ण को नवनीत मे मसल कर सुचिक्कण बनाकर रख दिया है, किन्तु निर्जीव अजन मिश्रित पुतला तो हिलता डुलता नही इसमे तो चेष्टायें हैं।" बूआ ऐसी तकना कर ही रही थी, कि श्याम सुन्दर कुछ-कुछ अस्पष्ट स्वर मे रोए, मानो परा, पश्यन्ति वाणी में प्रणव का जन्म हुआ। अब बूआ को सदेह न रहा। समझ गयी, भाभी ने लाला जाया है। पास मे पडी दाई को झखझोरकर उसने कहा—"बुढिया, बुढिया! दाई! मर ही गयी क्या? हाय! ऐसी बूढ़ी दाई भी न बुलानी चाहिये। समय पर ही सो जाती है। दाई हड़बड़ाकर उठी और बोली—"बीबी! क्या है?"

झुंझलाकर सुनन्दा बूआ ने कहा—"है क्या, तेरा सिर

है। पडी-पडी खुरटि भर रही है। वह भाभी के बच्चा भी हो गया।"

हडबडाकर दाई ने कहा—"अच्छा, बच्चा हो गया।" इतना कहते ही वह दौडी। मणियो के आलोक मे उसने देखा मानों–चिदानद सुधारस सरोवर मे एक अत्यन्त सुन्दर सुघर सुहावना नील सरोरुह खिल रहा हो। दाई ने दौडकर बच्चे को उठा लिया। पगली की भाँति चिल्ला उठी—"छोरा है, लल्ला है, राजकुमार है।" बस, फिर क्या था, इतना सुनते ही सबकी सब गोपियाँ जाग पडी। मसाले जल गयी। परिचारिकाएँ इधर-उधर दौडने लगी। परस्पर मे होड लग गयी, 'सबसे पहिले व्रजराज को इस शुभ सम्वाद को मैं सुनाऊँगी।'

इधर दासियाँ दौड रही थी, उधर बूढा अपने अङ्गो मे नही समाती थी। कुछ भारी शरीर था; कटि के भार से छरहरी हथिनी की भाँति इधर से उधर इस प्रकार दौड रही थी, मानो उड रही हो। दौडकर घर मे से काँसे की थाली ले आयी। बच्चे के कान के समीप आकर उसे बजाया। बच्चे की शोभा निहार कर अकी-सी जकी-सी, भूली-सी भटकी-सी, प्रेम में बेसुधि-सी बन गयी। फिर उन्हे चेत हुआ। हाथ मे गोबर और गेरू लेकर द्वार पर दौडी गयी। और स्त्रियाँ तो ऊँचे स्वर-से बोल नहीं सकती, किन्तु वह तो इस घर की लडकी ही ठहरी। उसे अपने की सुध नही। आँचल खिसक गया है। एड़ी तक काटकर कुर्ती दीखती हिल रही है। द्वार पर से ही उसने पुकारा—"मैया! मैया! भाभी के बच्चा हुआ है, छोरा हुआ है मैया।" और पता नहीं बूढी दासी आज युवतियों के भी कान काट रही है। वह बन्दर की तरह अपनी ओढनी को उडाती हुई दौडकर सीधे ही चौपाल पर पहुँच गयी है।

बुआ सुनन्दा ने गेरू के थापे रखे। फिर दौड़ी-दौड़ी घर में गयी, एक कारी हंडिया उठा लायी। उसे आँगन मे लाकर फट्ट से फोड दिया। फिर घर मे घुस गयी, सूप उठा लायी; उसे घुमाकर दौडकर घूरे पर फेंक आयी। बात की बात मे धाय के पास आ गयी। धाय बच्चे को लिए बैठी थी, बालक के अनवद्य सौन्दर्य को निहारकर वह आत्म विस्मृत-सी बनी हुई थी। उस इन्द्र-नीलद्युति के सदृश प्रकाशवान् बालक के सौन्दर्य माधुर्य को निर्निमेष दृष्टि से निहारती हुई, अपने आपे को भूल रही थी, उसे न यह पता था, मै कौन हूँ, कहाँ हूँ, यहाँ क्यों और किस कार्य के लिए आयी हूँ, मेरा क्या कर्तव्य है। बस, उस सौन्दर्य की घनीभूत राशि मे उसने अपने मन को खो दिया था।

सुनन्दा बूआ ने आकर दाई को झकझोरते हुए कहा—"सो गयी क्या मरी! इस बुढिया से तो कोई दूसरी ही दाई बुलायी जाती तो अच्छी थी। इसे नीद से ही अवकाश नही।"

सुनन्दा के झकझोरने से दायी पगली-सी कहने लगी—"बीबी! मैं कहाँ हूँ, क्या है, मैं कहाँ चली गयी?"

खोजकर सुनन्दा ने कहा—"तू वैकुण्ठ में चली गयी, ला, लाला को मुझे दे। तू जाकर पैर फलाकर सोजा।" यह कहकर बूआ ने लाला को ले लिया। स्त्रियाँ सोहर के गीत गा रही थी, द्वार पर नौबत नगाड़े बज रहे थे, बीच-बीच मे तुरही की तू तू तू तू की विचित्र ध्वनि सुनायी देती थी।

बूआ ने शीतोष्ण जल से श्रीहरि के मुख पर छीटे दिये मानो पूजा के प्रथम पाद्य अर्घ्य और आचमनीय दे रही हो, पुनः मोर पंख लेकर उनका व्यंजन किया। बूआ की गोद में आते ही पाद्य, अर्घ्य का पानी पाते ही जगत्पति रोने लगे। "रोने क्यों लगे जी"—मानो ह्राऊ-ह्राऊ करके सामवेद के स्वरो को प्रकट

कर रहे हों; अथवा आज से श्रीकृष्णलीला आरम्भ होगी, अतः सर्वप्रथम मङ्गलाचरण करने के लिये उन्होंने प्रणवध्वनि की हो।

दाई को अब चेतना हो गयी, उसने शीघ्रता से कहा "बीबी! बीबी! मैने बच्चे के मुख में उँगली तो डाली ही नही। लाओ तनिक मुझे दे दो। तुम सुन्दर धुनी हुई रुई वहाँ छीके पर रखी है उसे ले आओ।"

इतना सुनते ही सुनन्दा ने बालक को दाई की गोदी में दे दिया, दाई ज्यो-ज्यों बच्चे को देखती, त्यों-त्यों आत्म विभोर-सी होती जाती। इतने में ही दौडकर सुनन्दा रुई ले आयी। दाई ने अपनी उँगली को देखा, उसमें तनिक भी बढा हुआ नख नही था। उसे भली भाँति स्वच्छ करके उस पर रुई लपेट कर भगवान् के मुख मे वह उँगली डाली; साधारण बच्चो के कंठ मे कफ जरा आदि का अंश लिपटा रहता है, किन्तु भगवान् तो सभी मलो से निर्मुक्त हैं, उनका शरीर तो दिव्य चिन्मय है, उसमें क्या होना था। दाई ने उँगली से तालु, ओठ और कण्ठ को स्वच्छ किया। एक रुई के फोहे मे तेल भिगोकर भगवान् के तलवे पर रखा। अब भगवान् और स्पष्ट रुदन करने लगे। मानो मध्यमा वाणी में प्रणव उच्चारित हो रहा हो। तदनन्दर लालजी को दाई ने कूड़े में रखकर स्नान कराया। मानों पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय के अनन्तर अब स्नान हो रहा हो। स्नान कराके दाई ने कहा—"मैं तो इस पात्र को रत्नो से भरवाऊँगी।"

यह सुनकर सुनन्दा बूआ थाल भरके रत्नों को ले आयी, कूडे को रत्नो से भर दिया। लालजी अब स्वस्थ हो गये, अब मानों वैखरी वाणी से स्पष्ट प्रणव ध्वनि करने लगे। लालजी जब मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगे, तब दाई ने उन्हें उनकी बूआ की गोद में दे दिया। अब तक यशोदा मैया अचेत पडी थी। एक-

बार उन्होने अपने बालक की बाँकी झाँकी की थी, उसी से तन मन की सब सुधि भूल गयी थी। वे श्रीकृष्ण-दर्शन आह्लाद के सागर मे ऐसी निमग्न हो गयी कि, उन्हे चेतना ही न रही। दाई ने समझा रानी प्रसव की पीडा से अचेतन पडी हुई हैं, अतः उसने उनका उपचार करना आरम्भ किया। यशोदा मैया का शरीर कुछ स्थूल था। गोरे वर्ण के स्थूल शरीर पर उनके मातृ-स्नेह से परिपूर्ण लम्बे स्तन ऐसे प्रतीत होते थे, माना दो सुवर्ण के दिव्य पुञ्ज रखे हो। उनका कटिभाग अति स्थूल था। दाई ने उनकी नाभि पर दक्षिण हस्त रखकर नाभिको भली भाँति दबाया। बायें हाथ से पीठ को बल पूर्वक दबाकर उसे हिलाया। फिर पाँव की एडियो को शनै-शनै नाभि के ऊपर ले जाकर उनके नितबो की भली भाँति मालिस-सी की। समीप मे ही खडी दासी से कहा—'अँगीठी जल रही है, उसमें से चार बडे-बडे दहकते कोयले ले आ। दासी तुरन्त कोयले ले आयी। उन्हें दूर रखकर उसमे उसने भोजपत्र, साप की किचुली पिसा काँच और मणि के चूर्ण की धूनी दी। और तुरन्त बोली—"वह जो मैंने मौंफ, कूट, मैनफल और हीग डालकर तिल का तेल तैयार किया है, उसे उस सामने की दिवाल मे से उठा ला। दासी तुरन्त उस तेल को उठा लायी। उसका फोहा बनाकर दाई ने रखा, फिर कहने लगी—सोठ इलायची, चित्रक, चव्य, पीपल, कालाजीरा, देवदारु कूट, वायविडग, तथा विडनमक इनके कल्क म मिश्रित क्वाथ है इसे तुरन्त ले आ। इसके पीते ही अमरा गिर जायगा।"

इस प्रकार जब सब उपचार हो गये, तब यशोदा अपने व्रज-बालचन्द्र सच्चिदानन्द-कद श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लिया। वे देखती हैं नूतन दिव्य जलधर के समान उस दिव्य शिशु की आभा है, उनका प्रत्येक अग चम-चम करके चमक रहा है। वे समझ ही

नहीं सकती, कि यह घनीभूत आनन्द है या सुख की साकार मूर्ति है, अथवा प्रत्यक्ष सशरीरी आह्लाद है। वे जितना ही बालक को निहारती हैं, उतनी ही आनन्द मे विभोर होकर आत्म-विस्मृत सी बनती जाती हैं।

इधर जब बूढी परिचारिका ने नन्दजी को पुत्र जन्म का मधुरातिमधुर कर्णों को अमृत रस मे परिप्लावित करने वाला शुभ सम्बाद सुनाया। तो उनके हर्ष का ठिकाना नही रहा। उधर यशोदाजी ने एक बच्चा अपने उदर से उत्पन्न किया, इधर नन्दजी के हृदय से भी एक बच्चा उत्पन्न हो गया। उसकी पीडा मे ये भी मूर्छित हो गये।

यह सुनकर शौनकजी बोले—'सूतजी! आप यह कैसी उलटी गगा बहा रहे हैं। महाभाग! स्त्रियो के बच्चा होते तो हमने सदा सुना हैं। पुरुषो के कभी बच्चा हुआ हो यह बात तो हमने कभी सुनी नही। हाँ, महाराज मान्धाता अपने पिता के पेट से अवश्य उत्पन्न हुए थे, सो वह तो मन्त्रपूत जल के प्रभाव से ऐसा हुआ था। अच्छा यशोदाजी ने तो श्रीकृष्ण को उत्पन्न किया। नन्दजी के बच्चे का नाम क्या था?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! नन्दजी के बच्चे का नाम था आह्लाद। आत्मा से ही तो पुत्र उत्पन्न होता है। नन्दजी के अन्तरात्मा मे अत्यधिक आह्लाद उत्पन्न हुआ, उसी आह्लाद के कारण वे आमविस्मृत से बन गये। पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनते ही उनके रोम-रोम खिल उठे। नेत्रों से प्रेम के अश्रु स्वतः निकलने लगे सपूर्ण शरीर पुलकित हो उठा। जो हार पहिने थे, उसे सूचना देने वाली दासी को पहिना दिया। वे हक्के-बक्के से खडे ही रह गये।"

उपनंदजी ने कहा—"नन्द ! भैया ! तू घर में जा । देख कोई काम ही तो ।"

नन्द का हृदय बाँसो उछल रहा था, वे चाहते थे, अभी चलकर बच्चे को छाती से चिपटा लूँ । स्वप्न मे जो पुत्र की साँवली सलोनी मूर्ति देखी थी, वह उनके नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष नाचने लगी । वे उस साकार सौंदर्य का स्मरण करते ही अचेतन-से हो उठे । अपने बड़े भाई के सम्मुख अन्तःपुर मे कैसे जायँ, अतः वे बड़े कष्ट से बोले—"मै वहाँ जाकर क्या करूँगा । ब्रजभर की लुगाइयाँ तो वहाँ इकट्ठी हो रही है ।"

हँसकर उपनन्दजी बोले—"अरे तू अभी तक भौंदू ही रहा । तुरन्त उपनन्दजी अपने छोटे भाई सनन्द से बोले—"भैया जा तू जितने ब्रज मे ज्योतिषी ब्राह्मण हैं, सबको बुला ला । शाडिल्य जी को पहिले भेजना ।"

इतना सुनते ही सनन्दजी तुरन्त लाठी लेकर चल दिये । १०।२० गोप उत्साह मे भरकर उनके पीछे-पीछे चले । उपनंदजी स्वयं दौड़े दौड़े रोहिणी देवी के घर में गये । रोहणीजी प्रोषित भर्तृका ही ठहरी । उन्हे नियमानुसार उत्सव में न जाना चाहिये । अतः कई बार सूतिका-गृह का तो चक्कर लगा आयी है, किन्तु अभी तक उत्सव में नही गयी । उपनन्दजी ने जाकर कहा—"रानी ! तुम्हारे घर में पुत्र हुआ है, तुम यहाँ बैठी हो । वहाँ सार सम्हार कौन करेगा । अपने घर में भी कोई नियम होता है क्या ?"

संकोच के स्वर में रोहणीजी ने कहा—"अजी मैं अभी तो वहाँ से आयी हूँ, भेरी, वीणा, नौबत आदि बाजो की ध्वनि सुन कर ही मैं समझ गयी नंदरानी के लाला हुआ है, मैं अभी जाती हूँ ।" यह कहकर बलरामजी को गोदी में लेकर रोहणी देवी भी

पहुँच गयी। बलदेवजी जग पडे। वे चकित-चकित दृष्टि से अपने भाई की ओर देखने लगे। हँसने लगे और किलकारियाँ मारने लगे। सभी को बडा कुतूहल हुआ, यह लडका तो कभी हँसता ही नही था। आज तो यह बहुत हँस रहा है। सभी को पौर्णमासी पुरोहितानी की बात याद आयी। रोहिणीजी ने यशोदाजी से पूछा—'बीबी! कैसा चित्त है?"

यशोदा रानी यह सुनकर रो पडी, उनका कठ अवरुद्ध हो रहा था, उन्होने कुछ भी नही कहा केवल हाथ जोड दिये। रोहिणी ने दाई से पूछा—"क्या-क्या हुआ?"

दाई अकबका गयी और कुछ रुक रुककर बोली—"बालक को स्नान करा दिया है, तालुमे फोहा रख दिया है, सेधा नमक और घी चटाकर मैंने बालक को वमन करानी चाही, किन्तु उसने वमन नही की। बालक के अङ्ग मे न मल था न किसी प्रकार की अशुचिता। रानी ने पुत्र प्रसव के अनन्तर ही अमरा का परित्याग कर दिया है। अब जो आपकी आज्ञा हो वह करूँ।"

अधिकार के स्वर मे रोहणी देवी ने कहा—"ठीक है, अब बच्चे को ऐसे ही सुला दो। फिर सुनन्दा से बोली—"बीबी! तुमने महागोपुरो मे जो महादुन्दुभियाँ रखी हैं, उन्हे बजवाने की की आज्ञा नही दी?"

सुनन्दा शीघ्रता से बोली—"अरी, भाभी! क्या बताऊँ मैं तो भूल ही गयी थी, किन्तु बडे आश्चर्य की बात यह सुनी, वे दुन्दुभियाँ तो अपने आप बजने लगी। तुम सुन नही रही हो। उनकी ध्वनि २४ कोस मे पहुँचती होगी।"

रोहणीजी बोली—"अच्छा तो बीबी जी, एक काम करो। अभी तो बच्चे के नाल-छेदन मे देरी है, क्योकि अभी तो पण्डित आवेंगे। बडी देर तक वे पूजन आदि करेंगे। तब तक तुम एक

भीगे कपडे को नाभि मे रख दो, जिससे नाल सूखने न पावे।"

दाई बोली—"रानीजी! सो तो मैंने सब कुछ कर दिया है। अब बाहर से ब्रजराज को बुलाओ। अब देखो प्रात.काल ही होना चाहता है, अब देरी करने का काम नही है।"

यह सुनकर तुरन्त रोहिणीजी ने बूढी दासी को भेजा—"ब्रजराज से कहो, क्या कर रहे हैं वे। उनसे कहना जो कराना हो शीघ्र करावे। फिर हमे अपने घर के भी तो नेग जोग कराने हैं।"

दासी पुन: दौडी-दौडी गयी। वहाँ वह क्या देखती है, कि बडी-बडी पगडी बाँधे पडितो की सभा लग रही है। कोई लगन निकाल रहे हैं, कोई हाथ पर मेष, वृष, मिथुन, कर्क आदि गिन रहे हैं। कोई बालक के जन्म की यथार्थ घडी पूछ रहे हैं। महीना, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा कर्ण सभी ज्योतिष सम्बन्धी बातो पर विवाद कर रहे हैं।

दासी ने कहा—"ब्रजराज! महारानी रोहणी ने आज्ञा दी है, अब देर करने का काम नही आप अतिशीघ्र महलो मे पधारें।"

नन्दजी कहा—"अच्छी बात है; कहना हम आते है।"

यह सुनकर दासी चली गयी, तब उपनन्दजी ने शाडिल्य से पूछा—"अब इस नन्द को क्या करना चाहिये।"

शाडिल्यजी ने कहा—"अब इन्हे स्नान करना चाहिये। अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणो को धारण करना चाहिये, तब अन्त.पुर मे ब्राह्मणो के सहित बालक के जात कर्म सस्कार के निमित्त जाना चाहिये।"

इतने मे ही गोप बोले—"बाबा यहाँ ही नहा लें। गरम पानी अभी हम लाते हैं।"

यह सुनकर शाडिल्य मुनि बोले—"तुम सब सिर्री हो गये हो क्या रे ! तुम निरे भौंदू ही रहे। इतना भी तुम नही जानते पुत्र-जन्म के समय उष्ण जल से स्नान न करना चाहिये।"

गोप बोले—"अच्छी बात है महाराज, तो चलो यमुना स्नान ही कर आवे।"

यह कह कर बहुत से गोपो के साथ नंदजी यमुना स्नान करने गये। यमुना स्नान से लौट कर उन्होने अपना सफेद अगरखा पहिना। बडी सफेद पगडी बाधी उसके ऊपर पेच कसा। दुपट्टा कधे पर डाला। गोप गले मे पहिनी। कानो की मुरकियो को कपड़े से पोंछा। सोने की जजीर कंठ में पहिनी। इस प्रकार सज बज कर वे अन्त. पुर मे जाने के लिए तैयार हो गये। उनका हृदय प्रेम से भरा हुआ था। पुत्र दर्शन की चटपटी लगी हुई थी। शील सकोच से कहते नही थे, नही तो वे चाहते थे, मैं तुरन्त वहाँ पहुँच कर उस नयनाभिराम मूर्ति को देख कर अपने हृदय को शीतल करूँ। ब्राह्मण अपनी-अपनी पोथी पत्रा बाधे नन्दजी के पीछे पीछे चले। आगे आगे शाडिल्य मुनि जा रहे थे। उनके पीछे ब्रजराज और इधर-उधर दायें बाये तथा पीछे और भी बहुत-से वेदज्ञ ब्राह्मण चल रहे थे।

भीतर स्त्रियो की भीड लगी हुई थी, आँगन मे तिल रखने का स्थान नही था। नदजी इतनी भीड को देख कर सकपका गये। पहिले तो जहाँ उन्होने पौरी से खास मठार की कि, उनके खाँसने को सुन कर ही स्त्रियाँ लम्बा घूंघट मार कर एक ओर हट जाती थी, आज खास मठारने की बात तो कौन कहे शाडिल्य जी बार-बार कहते—"बेटियो ! तनिक हट जाओ।

नन्दराय आ रहे हैं।" किन्तु कौन सुनता है, वे तो आनन्द मे विभोर होकर अपने आपे को भूली हुई थी।"

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! जैसे-तैसे प्रसूति-गृह के सम्मुख आँगन मे स्थान किया गया। वहाँ सुन्दर आसन बिछाये गये। जात कर्म सस्कार की सभी सामग्री जुटाई जाने लगी। नदजी चुपचाप बैठे-बैठे इन सब बातो को देखने लगे। अब जात-कर्म की कथा आगे सुनाऊँगा।"

छप्पय

ज्योतिषविद्या विज्ञ बहुत से विप्र बुलाये।
नदमहरि सुत जन्यो सुनत सब द्विज उठि धाये॥
सबने आशिष दई महरि के सुफल बताये।
सबकी सम्मति समुझ नंद जमुनामहँ न्हाये॥
बूढ़े बाबा पहिन पट, आज अनंग के सम खिले।
वृद्ध गोप अरु द्विजनि सँग, प्रमुदित अन्त पुर चले॥

श्रीनन्दात्मज का जात-कर्म संस्कार

[८३९]

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ ❀

(श्रीभाग० १० स्क० ५ अ० २ श्लोक)

छप्पय

गोपिनितैं घर घिर्‍यो गीत सोहरिके गावैं ।
सुधि बुधि भूलैं खड़ीं हटैं नहिँ विप्र हटावैं ॥
ज्यों त्यों भीतर गये द्विजनि सामान मँगाये ।
जात करम अरु देव पितर पूजन करवाये ॥
ब्रज सुख-सागर शान्त सम, उमड़ि हरष प्रकटित करैं ।
उदित भये ब्रजचन्द्र हरि, रत्ननितैं तटकूँ भरैं ॥

संस्कार ही सदाचार में मुख्य कारण है। जिसके जैसे संस्कार होंगे, आगे वैसा ही उसका जीवन होगा। माता-पिता कुटुम्ब, परिवार के लोगों के जैसे संस्कार होंगे बालक पर भी उनका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। इसके अपवाद भी देखे जाते हैं, किन्तु नियम में अपवाद तो हुआ ही करते हैं, नियम ऐसा ही है।

❀ श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! पुत्र उत्पन्न होने पर नंदजी ने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराके विधिवत् सुत का जात-कर्म संस्कार कराया तथा देवता और पितरों का पूजन कराया।"

समाज की संस्कृति का प्रभाव भावी सन्तानों पर पड़ता है, इसीलिए आर्य वैदिक सनातन धर्म में वैदिक संस्कारों के प्रति बड़ा आग्रह प्रकट किया जाता था, स्त्री विषय के लिये नहीं है। यह नहीं जब इच्छा हो संयोग करो। इन सब बातों का नियम है, गर्भाधान भी एक संस्कार है, प्रथम विधिवत् वेदोक्त विधि से हवन पूजन आदि करके वैदिक या तांत्रिक मंत्रों द्वारा गर्भाधान संस्कार करे, गर्भ रह जाने पर पुनः पुंसवन संस्कार करे। फिर सीमन्त संस्कार होता है; उत्पन्न होने पर जात-कर्म संस्कार होता है। इन सब संस्कारों का एक मात्र तात्पर्य यही है, कि बच्चे के शुभ संस्कार बनें। गर्भ में रहने के दोषों को निवारण करने के निमित्त जात-कर्म संस्कार होता है। नाभिच्छेदन के पूर्व ही यह संस्कार किया जाता है। जब वैदिक संस्कारों में आस्था थी, तब प्रत्येक द्विज के यहाँ ये सब संस्कार किये जाते थे, अब तो इनकी कथा मात्र ही अवशेष है। विकृत रूप में कुछ संस्कार अब भी अवशिष्ट हैं।

सूतजी कहते—"मुनियो! वेद वेदाङ्ग के जानने वाले ज्योतिष विद्या में निपुण ब्राह्मणों को साथ लिये हुए नंदजी आँगन में पहुँचे। सामने ही प्रसूति-गृह था। घर के सम्मुख पर्दा पड़ गया। आँगन में ऊनी बिछौने बिछ गये, स्त्रियाँ सब दालानों में बैठ गयीं। उनमें जालीदार परदे लग गये, सुनन्दा बूआ और दास दासियाँ ही आँगन में रह गयीं। नंदजी ने कहा—"सुनन्दा देख, ये जो ब्राह्मण कहें, वे सब वस्तुएँ लाकर यहाँ रखती जा।"

सुनन्दा बूआ ने कहा—"पूजन की सामग्री तो मैंने पहिले ही इकट्ठी कर रखी है। कलश, यमुना जल, आसन, दूध, दही, घृत, दीप, नैवेद्य, सुपारी, फल, वस्त्र, कलावा, यज्ञोपवीत, ये सब तो हैं। पान अभी मँगाती हूँ, इनके अतिरिक्त और जो चाहिये सो 'डिनजी बतादें'।" यह कहकर तुरन्त उन्होंने सेविकाओं से

सब वस्तुएँ मँगा दी। पंडितों ने सब वस्तुओं को यथा स्थान सजाया। फिर बोले —'अच्छा तो कार्य आरम्भ हो।"

सुनन्दा बोली—'पंडित जी, भाभी तो बाहर आ नहीं सकती।"

पंडित जी बोले—"कोई बात नहीं, नंदराय के दुपट्टा में एक बड़ी सी पगड़ी जोड़ कर नंदरानी की ओढ़नी में बाँध दो। इतने-से ही काम चल जायगा। जा बाँध आ।'

हँस कर सुनन्दा बोली—"पहले अपना नेग जोग लेलूँगी तब बाँधूँगी या वैसे ही बाँध आऊँगी।"

पंडित जी बोले—'तू ही तो घर की सब कुछ है, जो चाहे सो ले लेना।'

सुनन्दा बोली—'सब कुछ होने से क्या हुआ सब बात समय पर शोभा देती है। आज मेरे लेने का समय है।"

नंदजी ने हँस कर कहा—'तू अब क्या काम करती है या लड़ाई करती है।'

सुनन्दा बोली—"भैया! मेरी लड़ाई का तो यही समय है मैं लड़ूँगी झगड़ूँगी।"

नंदजी ने हँस कर कहा— जा, जा, काम कर अपनी भाभी से माँगना।"

यह सुनकर नंद जी के दुपट्टा में गाँठ बाँध कर सुनन्दा सूतिका गृह में गयी और बोली— भाभी गाँठ बधाई चन्द्रहार लूँगी।"

आँखों में आँसू भर कर यशोदा मैया ने कहा— बीबी! सब तुम्हारा ही तो है मैं देने वाली कौन होती हूँ।' सुनन्दा बूआ ने गाँठ बाँध दी। बच्चे को गोद में लेकर आ बैठी।

ब्राह्मणों ने प्रथम सस्वर स्वस्तिवाचन कराया। तदनन्तर नंद-

जी से सकल्प कराया, नदजी की दृष्टि एक टक उस नीलवाल-मणि, तेजपुंज सुधारस सागर सौन्दर्य-सा सरोरुह सुत के सलोने शरीर पर ही लगी थी, वे उसकी शोभा को निरखते-निरखते आत्मविभोर-से हो रहे थे। पडित कहते 'महाराज! जल छोडो, पुष्प छोडो, नद जी कुछ सुनते ही नही थे, सुनते थे, तो कुछ का कुछ छोड देते थे। जब ब्राह्मण कई बार कहने लगे तब उन्होने कहा—'ब्राह्मणो! न जाने मुझे क्या हो गया है, मेरा चित्त कुछ अच्छा सा नही है। आप मे से कोई मेरा प्रतिनिधि बन कर इन सब कृत्यो को करावे।"

एक वृद्ध पडित बोले—"हाँ, हाँ, यह उत्तम विधि है। वैश्य क्षत्रिय अपने प्रतिनिधि ब्राह्मण से ही करा सकता है। इन पडितजी को अपना प्रतिनिधि बना दो।"

नद जी ने ऐसा ही किया, अब वे ब्राह्मणो के द्वारा करवाने लगे। ब्राह्मणो ने प्रथम कलश-पूजन, दीप पूजन, शखादि का पूजन कराया। पुन. सक्षेप मे गणपति, नवग्रह, षोडशमात्रिका, पच देवो का पूजन कराया। पुन. नान्दीमुख श्राद्ध कराया। पितर-गण स्वर्ग मे बैठे इसी बात की प्रतीक्षा करते रहते हैं, कि हमारे वश मे कोई पुत्र उत्पन्न हो, जो हमे जल तर्पण तथा पिडादि श्राद्ध द्वारा तृप्त कर। अपने वश मे पुत्र उत्पन्न होने से पितरो को अत्यधिक प्रसन्नता होती है।

देवता और पितरो का पूजन अर्चन होने के अनतर तीन व्याहृतियो से 'उपयिदधामि' ऐसा मत्र पढ़कर चौथी ऋचा मे प्रणव लगा कर बताया गया, तेरी मेधा को मित्रावरुणा बढावे'। फिर पाँचवी ऋचा मे प्रार्थना की गयी तेरी मेधा को अग्नि कमलो-की माला धारण करने वाले अश्विनी कुमार बढावे ऐसे मन्त्र पढ़ कर सुवर्ण की सलाका से बालक की जिह्वा पर घृत के

विन्दु डाले गये। इस मेधा वृद्धि संस्कार से बालक तीक्ष्ण बुद्धि-वाला होता है। तदनतर वेदोक्त मत्रो द्वारा मन्त्रित किया हुआ विषम भाग में घृत और शहद मिलाकर बालक को चटाया। जिससे बालक की कान्ति प्रकृति स्निग्ध हो, उसकी वाणी मधु के सदृश मीठी हो। फिर ब्राह्मणो ने भाँति-भाँति के आशीर्वाद दिये।

इस प्रकार जात कर्म सस्कार के सब कृत्य होने पर ब्राह्मणो ने बालक को भीतर ले जाने की आज्ञा दी। सुनन्दा बूआ बालक को यशोदा मैया की शैया पर सुला आयी। अब तक नन्दजी ब्रह्मानन्द मे निमग्न हुए अचेतन-से पड़े थे। आकर सुनन्दा ने कहा—"भैया! अब कहो तो बच्चे का नालच्छेदन किया जाय।"

नन्दजी मानो सोते से जागे हो। सम्मुख उस साँवरी सलोनी मूरति को न देखकर वे हड़बडा कर उठ खडे हुए और बोले—"सुनन्दा! अब क्या करना होगा।"

सुनन्दा ने कहा—"अब भैया! तुम चौपाल पर जाओ। हम अपने घर के नेग-जोग करेंगी। हाँ, पडितजी से पूछ लो नालेच्छेदन करे।"

नन्दजी ने कहा—"अरी, अभी नालेच्छेदन कैसे होगा, इन सब ब्राह्मणो को दान दक्षिणा देनी है। अभी नालेच्छेदन का काम नही। हमारा यही प्रथम और यही अन्तिम पुत्र है। अब हमारे कोई दूसरी सन्तान होगी, ऐसी आशा नही। मेरा मन कहता है आज मैं अपना सर्वस्व लुटा दूँ।"

सुनन्दा ने कहा—"हाँ, भैया! बडी अच्छी बात है, लोग कब से आशा लगाये बैठे हैं। ये ब्राह्मण कितने दिनो से यमुना जी पर कुटिया बनाये अनुष्ठान कर रहे हैं। सबकी इच्छा पूरी

कर दो। सबको ऐसा बना दो, कि फिर इन्हे याचना ही न करनी पड़े।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपनी बहिन के ऐसे उत्साह वर्धक वचन सुनकर नन्दजी तुरन्त चौपाल पर आये, उन्होंने अपने कोषाध्यक्ष को बुलाया और फिर वे भांति-भांति के दान करने लगे।"

छप्पय

लौकिक वैदिक कर्म करे सुतके मङ्गल हित।
निरखि निरखि सुत-वदन हृदय होवे आनन्दित॥
चितमहँ अति उत्साह विचारे का दे डारूँ।
ऐसे सुतकूँ पाइ क्यों न सरवसु हौं वारूँ॥
यों विचारि चौपारिमहँ, कोषाध्यक्ष बुलाइकें।
बोले ताले खोलकें, सब धन देहु लुटाइकें॥

पुत्र-जन्म के उपलक्ष में नंदजी द्वारा विप्रों को दान

[८४०]

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

पुनि बुलवाये गोप कही खिरकनिकूँ खोलो ।
मनमानी द्विज धेनु लेहिँ मत तिनतें बोलो ॥
चाँदी के खुर करो-सींग सोनेतें मढ़िकैं ।
सुंदर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितें चढ़िकैं ॥
माँगें जितनी जों गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ ।
देहु न होवै- नेंकहू, कमी-- मान सम्मानमहँ ॥

हृदय में भिन्न-भिन्न वृत्तियो की स्नायु होती हैं, जब जैसा भाव होता है, तब तैसी वृत्तियाँ उदय हो जाती हैं । बहुत-से भाव स्वतः एकान्त में उदित हो जाते हैं, बहुत-से किसी बाह्य कारण से उदित होते हैं । कामिनी को देखकर काम के भाव उदय हो जाते हैं,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नन्दजी ने बीस लाख गौएँ ब्राह्मणों को दीं; वे सबकी सब वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत थी । सात तिलके पर्वत भी दिये, जो रत्नो से तथा सुनहरे काम किये हुए वस्त्रों से ढके हुए थे ।"

जिन्होने काम पर विजय प्राप्त करली है, उनकी बात दूसरी है। किसी हर्ष के समाचार को सुनकर हमारा रोम-रोम खिल उठता है। चित्त अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाता है, इसी प्रकार प्रियजनो की विपत्ति मृत्यु आदि सुनकर शोक सम्बन्धी स्नायुयो मे एक प्रकार का विशेष स्पंदन होता है, हृदय धडकता है, नेत्रो मे अश्रु आ जाते हैं, चित्त व्याकुल हो जाता है। कुछ वृत्तियो के आने से संग्रह का भाव जाग्रत होता है, जैसे कोई अपरिचित इष्ट वस्तु की याचना करे या संग्रहणीय वस्तु के नाश का प्रसग हो, ऐसे समय लोभ की वृत्ति प्रबल हो जाती है। किसी समय उदारता की स्नायु बलवती बन जाती है, पुत्रोत्सव के समय, विवाह के समय अथवा अन्य उत्सव-पर्व या सस्कार के समय चित्त मे देने की व्यय करने की भावना जाग्रत होती है। इन सब मे केवल काल का ही प्रभाव नही पडता है, अपितु देश और पात्र का भी संयोग होना आवश्यक है। कोई पात्र अनुपम युक्त है, उस पर देश काल का प्रभाव ही नही पडता। एक अत्यंत कृपण है, उसे किसी को खिलाना हो, विवाह हो, पुत्र-जन्म हो, व्यय करते समय उसके प्राण निकलेगे। उस पर काल का जितना चाहिये उतना प्रभाव नही पडता। एक अत्यंत वज्र हृदय पुरुष है, उसकी लडकी बहिन विदा हो, सगे सम्बन्धी मर जायें, उसकी फूटी आंखो से एक भी आंसू न गिरेगा। या पूर्ण ज्ञान निष्ठ की भी ऐसी दशा होती है। माघ का महिना है, तीर्थराज प्रयाग ऐसा पुण्य क्षेत्र है, वहां स्नान करके दान पुण्य करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, यह देश का प्रभाव है। यदि कोई उदार चित्त का व्यक्ति है, उसे यदि कोई अभूत पूर्व प्रसन्नता हो जाती है, जैसे अब तक उसके पुत्र नहीं और सहसा आशा न रहने पर भी पुत्र हो जाय, तो उस समय उसकी उदारता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है,

देत-देते उसका चित्त भरता भी नही। ऐसा लगता है, मा
सर्वस्व दान कर दूँ। बौद्ध काल मे सम्राट् हर्ष के सम्ब
मे ऐसी प्रसिद्धि है, कि जब प्रयाग में बारह वर्ष के पश्चात् क
लगता था, तो वे अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणो को भिक्षुओ
तथा दीन दुखियो को बाँट देत थे। यहाँ तक कि अपना रा
मुकुट भी उतार कर दे देते थे। एक लँगोटी लगा कर रह जा
थे। सूर्यवश तथा चन्द्रवश के बहुत-से राजाओ की ऐसी कथा
हैं कि, वे अपने यज्ञो मे सर्वस्व दान कर देते थे, और अत मे मिट्टी
के पात्रो मे खाते थे। वास्तव मे यही तो धन का उपयोग है। दे
जाय तो धन है क्या। जसे भूमि से कही काली मिट्टी निकल
है, कही पीली, कही सफेद। ऐसे ही सोना, चाँदी आदि धातु
भी मिट्टी ही है, जहाँ से उत्पन्न हुई हैं। वही मिल जायँगी।
न आज तक किसी की हुई न होगी। यह लोगो का भ्रम
मोह है, कि हाथ मे रुपया पैसा या अन्य धन आते ही मेर मे
कह कर उसमे लोभ करने लगते हैं। धन तो यही से उत्पन्न हु
है यही रह जायगा केवल यश अपयश ही शेष रह जाता
मनुष्य उसके द्वारा सद्वृत्तियो का उद्बोधन करके स्वर्ग लाभ
कर सकता है और लोभादि असद्वृत्तियो को बढा कर घोर न
क मे भी जा सकता है। हर्ष के समय जिसकी त्याग वृत्ति जाग्र
न हो उस या तो त्रिगुणातीत समझो या फिर नरपशु।

सूतजी कहते है—"मुनियो! नदजी महामना थे। उनक
चित्त अत्यत ही उदार था। व्रज मे उनकी उदारता सर्वविदि
थी। सहस्रो वेदज्ञ ब्राह्मणो को उन्होने आश्रय दे रखा था। व्र
के जितने गोप है सब उन्हे अपने पिता के समान मानते थे
जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती, अपने घर के समान न
जी के यहाँ आते और उठा ले जाते थे। भाग्य से ऐसा ही स्वभा

जाते, गोप तुरत उनके खुरो को चाँदी से मढ देते। सीगो मे सोना लगा देते। कठ मे सुवर्ण की माला पहिना देते। ऊपर से सुवर्ण के काम का दुशाला उढा देते। पूँछ मे मोतियो को लगा

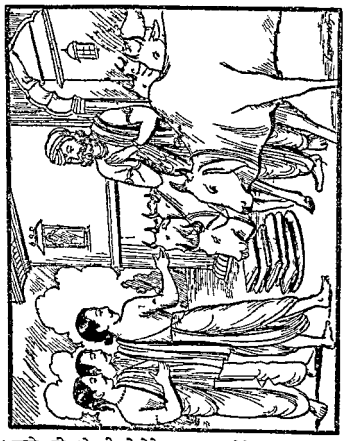

देते। कासे की दोहनी दे देते। अन्न रख देते, ब्राह्मण को भी अँगरखी, पगडी, पेच, दुपट्टा, साफी तथा मणि मुक्ताओ और सुवर्ण की मालायें पहिना देते। इस प्रकार अलकृत गौओ को अलकार किये हुए ब्राह्मणों के लिये तुरन्त दे देते थे। किसी

को रोक नहीं, टोक नहीं, जिसे जितनी चाहिये उतनी ले जाओ। बहुत-से आते सहस्रों छाँट लेते, फिर सोचते—'और गौओं का ले जाना तो सरल है, इन्हे रखेंगे कहाँ, बाँधेंगे कहाँ। फिर इनकी रेख-देख कौन करेगा। यही सब सोच कर वे सब को छोड देते, दो चार ले जाते। इस प्रकार दिन भर यही लीला होती रही।

एक ब्रह्मण था, घर तो उसका छोटा था, किन्तु तृष्णा बडी थी। अच्छी-अच्छी सुदर-सुदर पचास गौएँ ले आया। इसकी स्त्री कुछ ऐसी ही सट्ट-पट्ट थी। वह तो बडे उत्साह मे बडी प्रसन्नता मे गौओ को लाया। उसने सोचा—"मेरी घरवाली अत्यन्त प्रसन्न होगी।।" आते ही उसने घर मे आँगन मे पैरी मे द्वार पर सर्वत्र खूँटे गाड दिये। फिर भी गौएँ न समायी। तब उसने घर मे रसोई घर मे खूँटे गाढे। अब घर मे एक तिल रखने को स्थान न रहा। गौएँ फिर भी शेष थी। उसने अपनी घर वाली स पूछा—"सुनती है सुक्खा की माँ! ये गौएँ बच रही हैं इन्हे कहाँ बाँधूँ।"

उसने कहा—"एक खूँटा मेरे सिर पर गाड दो उसमे बाँध दो।"

ब्राह्मण बोला—"अरी, क्रोध क्यो करती है, कैसी सुन्दर-सुन्दर तो मै गौएँ लाया हूँ, तुझे प्रसन्न होना चाहिये। उलटे व्यग वचन बोल रही है।"

उसने तुनक कर कहा—"और कहाँ स्थान बताऊँ। घर तो तुम्हारा जितना बडा है उतना ही रहेगा। वह बडा तो हो सकता नही। चौका चूल्हे को भी तो तुमने घेर लिया है। चूल्हे पर खूँटा गाड दिया है, अब मै रोटी कहाँ करूँगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"अब रोटी का क्या काम? अब तो खीर बनाओ और दोनो हाथो से सपोटो।"

स्त्री बोली—'खीर बनाने को भी स्थान चाहिये।"

ब्राह्मण बोला—"बरोसी मे बने, यदि तेरी इच्छा होगी तो कुछ गौओ को ससुराल भेज देंगे।"

यह सुन कर स्त्री प्रसन्न हो गयी और उसने ब्राह्मण की बात-को स्वीकार कर लिया।" इस प्रकार दिन भर गौओं का दान होता रहा। जब सब चले गये, तो नदजी ने पूछा—"सब कितनी गौएँ दान दी गयी।"

सेवको ने गणना करके बताया—'बीस लाख गौएँ अब तक दान हुई हैं।"

नदजी ने कहा—"इतने से तो हमारी तृप्ति हुई नही। उन्होने ब्राह्मणो से कहा—"ब्राह्मणो! मेरी तो इच्छा यह होती है, कि सुवर्ण के सुमेरु को दान दे दूँ। किन्तु सुमेरु हमे मिले कैसे?"

ब्राह्मण बोले—"बाबा! साक्षात् सुमेरु न भी हो, तो भी पुराणो मे ऐसे उपाय है कि, सुमेरु दान का फल मिल जाता है।"

नन्दबाबा बोले—"हाँ, हाँ वह उपाय मुझे अवश्य बताओ। उसे मै करूँगा।"

ब्राह्मण बोले—"बाबा! तिलो का एक ऐसा ढेर लगाओ जिसके पीछे खड़े होने पर मनुष्य दिखाई न दे। उसे रत्नो से ढक दो उसके ऊपर पीला वस्त्र ढक कर ब्राह्मणो को दान कर दो। सुमेरु पर्वत के दान का फल हो जायगा। यदि ऐसे सात पर्वत दान कर दो तो ब्रह्माण्ड दान का फल हो जायगा।"

नन्द बाबा बोले—"तो ब्राह्मण मुझसे ऐसे सात तिल के पर्वतो का ही आप दान करावें।"

फिर क्या था इस समाचार से सब के हर्ष का ठिकाना नही रहा। सहस्रो बोरियो मे भरे तिल मगाये गये। उतने ही मणि मुक्ता आदि रत्नो के समूह मँगाये गये। सुनहरे काम के बहुत से पीले रग के बहुमूल्य दुशाले मँगाये गये। सात स्थानो मे तिलो-के बड़े-बडे सात पर्वत बनाये गये। उनके ऊपर मणि मुक्ता इस

प्रकार बिछाये गये, कि तिल दिखाई ही न दें। फिर वे सब पीले दुशालाओं से ढक दिये गये। उनको सब ब्राह्मणों के लिये दान कर दिया गया।

यह सुन कर शौनकजी बोले—"सूतजी! पुत्र उत्पन्न होने पर वृद्धि सूतक लग जाते हैं। सूतकों में तो ब्राह्मण उस घर का जल भी नहीं पीते, फिर इतने दान ब्राह्मणों ने सूतक में कैसे ले लिये।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! पुत्र उत्पन्न होने पर सूतक तभी लगता है जब नालच्छेदन हो जाय। जब तक नालच्छेदन नहीं होता तब तक सूतक नहीं माने जाते। उस समय में दान लेने में कोई दोष नहीं, ऐसा शास्त्र का प्रमाण* हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! आपका कथन सत्य है, अच्छा फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! फिर घर में जो भीतर नेग जोग होते हैं, वे हुए। उन सबका भी मैं वर्णन करूँगा। नन्दोत्सव की कथा बड़ी सरस है। इसे शनैः शनैः कुछ रुक-रुक कर कहूँगा। आप ऊबें नहीं।'

छप्पय

सब गोपनि ब्रजराज नंद आज्ञा सिर धारी।
कनक रतन लै धेनु दान की कीन्हीं त्यारी॥
हल्ला ब्रजमहँ मच्यौ सुनत सब द्विजगन आवें।
छाँटि-छाँटि के धेनु लेहिं अतिशय हरषावें।
पाँच, सात, दश, बीस, सौ, लेश्रौ चाहें सहसहू।
आज खिरक नवई खुले, रोक टोक नहिं नेंकहू॥

---

* यावन्न छिद्यते नाल तावत्प्राप्नोति सूतकम्॥
छिन्ने नाले तत पश्चात्सूतक तु विधीयते॥

श्री नंदजी ने अपना सर्वस्व सार्थक किया

[८४१]

कालेन स्नानशौचाभ्या सस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ।*
(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

बीस लक्ष्य दै धेनु नहीं सन्तुष्ट भयो चित ।
तिलके परवत सात रत्न पट दीये हरषित ॥
दयो शुद्धि हित दान यही सद्व्यय धनको है ।
शुद्ध कालतें भूमि तोष कारन मनको है ॥
मज्जनतें तनु वस्तुकी, शुद्धि शोचतें कहैं मुनि ।
गर्भादिक संस्कारतें, आशय होवे शुद्ध पुनि ॥

इस जगत की स्थिति पञ्चपर्वा अविद्या के कारण है । यदि अविद्या का आवरण न हो, तो यह ससार इस प्रकार अनेक रूप मे चित्र विचित्र दिखाई न दे, भगवान् तो नियम से परे ही है वे जो चाहे सो करें उनके लिये कोई नियम नहीं । नही तो साधारण नियम यह है, कि सब वस्तुएं मल सहित उत्पन्न होती है । क्रिया द्वारा उन्हें निर्मल बनाया जाता हैं, सस्कार

* श्री शुकदेव जी कहते हैं— राजन् ! सम्पूर्ण द्रव्यो की शुद्धि क्रमश: समय के द्वारा स्नान शौच सस्कार, तप, यज्ञ दान तथा सन्तोष के द्वारा होती है और आत्मविद्या के द्वारा आत्मा की शुद्धि होती है ।

द्वारा वे विशुद्ध होती हैं। खान से सुवर्ण, चाँदी, ताँबा आदि धातुएँ जैसी हम देखते हैं वैसी नही निकलती। वहाँ से अशुद्ध मलावृत निकलती हैं, पीछे युक्तियो द्वारा तपा-तपाकर उन्हें शुद्ध किया जाता है। हम श्रीमानो के कठो मे आभूषणो मे जो मणियाँ देखते हैं, खान से वे ऐसी चमकीली नही निकली हैं। वहाँ से तो वे मल युक्त निकली हैं। निकालने पर उनका सस्कार किया गया। खराद पर उन्हे खरादा गया, तब उनमे चमक आयी। जिन गेहूँ, जौ, चावलो को हम खाते हैं, वे खेत से ऐसे ही विशुद्ध उत्पन्न नही हुए थे। खेत से आये तो व छिलको से ढके थे। कूट-कूट कर उनका सस्कार किया गया, छिलके उतारे गये। सूप मे रखकर फटका गया। फिर एक-एक करके धोने गये, चक्की मे पीसे गये चलनी मे छाने गये। इतने सस्कारो के अनन्तर वे खाने के योग्य हुए। बनाकर भगवान् का भोग लगाया गया। अतिथि आदि को देकर गो ग्रास आदि निकाल कर तब प्रसाद पाने योग्य हुआ। इसीलिये ये सिद्धान्त है, कि सस्कार ही शुद्धि मे मुख्य कारण हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर नन्द जी तो दान देने मे बेसुध हो रहे थे, उधर स्त्रियाँ बच्चे के नालच्छेदन के लिये व्याकुल हो रही थी। वे कहती देना लेना तो बना ही रहेगा, बच्चे को घुटी देनी है, मैया को कुछ आहार देना है, रात का बच्चा हुआ है।"

दासियो ने आकर नन्दबाबा से कहा—"नन्द बाबा ने ब्राह्मणो की ओर देखा। तब ब्राह्मण बोले—'हाँ, हाँ नालच्छेदन हो। आपको जो देना हो, सकल्प कर लें, फिर चाहे जब तक देते रहें।"

नन्दजी ने हाथ जोड़कर आँखो मे आँसू भरकर कहा—"मेरा

तो सभी संकल्प है महाराज ! जैसी आप सबकी आज्ञा ।" फिर दासियों से कहा—"हाँ, जाओ नालेच्छेदन करो ।"

इतना सुनते ही दासियाँ दौड़ी-दौड़ी आयी और सुनन्दा से बोलीं—"बीबी ! बीबी ! व्रजराज ने आज्ञा दे दी है, नाल छेदन करो ।" यह सुनकर सभी को हर्ष हुआ ।

यशोदा मैया, लालजी को गोद में लिये हुए है, बार-बार उन्हें भाव समाधि हो जाती है, जब भी लाल की अद्भुत शोभा मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त आनन को निहारती है, तभी वे अचेत बन जाती है, उनके नेत्रों से निरन्तर नेह का नीर निकल कर नील नीरदद्युति नन्दलाल के नील वदन को भिगो रहा था मानों नेह नीर से न्हिला रही हों । अथवा नव जलधार द्युति श्याम को संकेत कर रही हो कि बरसो-बरसो और इस व्रज मंडल को प्रेम परिप्लवित कर दो अथवा बच्चे को भूखा समझ कर स्तनों से दुग्ध न बहते देखकर नेत्रों के निर्मल नेह नीर से ही उनकी बुभुक्षा शान्त करने का प्रयत्न कर रही हों । अथवा वाणी रुद्ध होने के कारण नेत्रों से नीर बहाकर ही संकेत कर रही हों, कि इसे न्हिला दो, कुछ पिला दो । इतने में ही सुनन्दा बुआ सुवर्ण की बनी चमचमाती छुरी ले आयी । दाई के हाथ में देकर बोलीं—"दादी ! अब देर मत कर शीघ्र नाल काट दे ।"

दाई ने झिड़ककर कहा—"कोई गाजर मूली है, जो काट दूँ, नाल तो विधि पूर्वक ही काटा जायगा ।"

बूआ ने कहा—"विधि पूर्वक ही काट, बुढ़िया ! तेरे मुँह में दाँत तो एक भी नही गरजती है सिंहनी की तरह । है तो डोकरी बनी, है लोठरी-सी । कर क्या-क्या विधि करेगी ।"

बुढ़िया दाई बोली—"हल्दी लाओ रेशम का धागा वह मेरी संदूकची में रखा उसे मँगाओ जल लाओ ।"

बूआ जाकर स्वयं ही सब वस्तुओं को उठा लायीं। बुढ़िया ने अपने काँपते हुए हाथों से नाल को प्रथम नापा। नाभि से ८ अंगुल छोड़कर जड़ाँ उसमें एक गाँठ-सी थी, उसके नीचे रेशम का डोरा बाँधा। एक अंगुल छोड़कर ऊपर भी एक डोरा बाँधा। हल्दी लगायी, छुरी का पूजन किया और फिर बैठ गयी।

उप नन्दजी की पत्नी जो लालजी की सबसे बड़ी ताई हैं, उन्होंने दायी से कहा—"अब देर क्यों कर रही है बुढ़िया! नाल काटती क्यों नहीं?"

दाई बोली—"वैसे ही काट दूँगी? पहिले अपना नेग जोग तो ले लूँ। पहिला लाला है भगवान् करे ऐसे बहुत होवें। सदा हम नाल काटती रहें।"

हँसकर सुनन्दा बूआ बोलीं—"तब तक बुढ़िया तू बैठी ही रहेगी? मिलेगा नेग जोग काट देर मत कर।"

बुढ़िया तुनक कर बोली—"अपने लिये तो भैया भाभी से लड़ रही थी। चली है मुझे सीख देने। नहीं काटती मैं। लो, तुम ही काट लो। जब तक मेरी दक्षिणा न मिलेगी।"

हँसकर उपनन्द पत्नी बोली—"अच्छा, क्या लेगी तू?" फिर सुनन्दा से बोली—"बीबी! इसे भी एक थाल भर के मोती दे दो।"

बुढ़िया तुनक कर बोली—"मुझे मोती मूँगा नहीं चाहिये। मैं तो जो नन्द रानी नौलखाहार पहिने हैं उसी को लूँगी।"

बूआ बोली—"इसे पहिन कर तू गौने को जायगी। बड़ी अच्छी लगेगी इसे पहिन कर बन्दरी-सी। दूसरा ब्याह करले तब हार पहिनना इस पोपले मुँह में तिनका जैसे शरीर में हार अच्छा लगेगा।"

इतने मे ही नन्दजी आ गये। उन्हे बालक को देखने की चटपटी लगी हुई थी, भीतर दाई और सुनन्दा मे झगडा होते देखकर वे बाहर से ही बोले—"सुनन्दा! अरी, लाली, क्या झगडा है।"

वही से अबल सम्हालती हुई सुनन्दा बूआ बोली—"भैया यह बुढिया नही मान रही है, झगडा करती है, नाल नही काटती।"

नन्दजी ने कहा—"बात क्या है क्या नही काटती? तुम उसका नेक जोग न देती होगी?"

सुनन्दा ने कहा—"बडी भाभी दे तो रही है, किन्तु यह अड रही है मैं तो भाभी वाला नौलखाहार ही लूंगी।"

नन्दबाबा की आंखो मे आंसू भर आये वे सोचने लगे—"धन्य मेरा भाग्य जो आज मेरे बच्चे के पीछे सभी अपना अधिकार जमा रही हैं, सभी झगडा कर रहे हैं। ऐसा अवसर भाग्यवानो को ही प्राप्त होता है उनका कंठ रुद्ध हो गया। कुछ आगे बढ कर बच्चे की ओर देखकर बोले— दे दो, दे दो हार और बन जायगा। आज किसी के मन को मारो मत।'

इतना सुनते ही नन्दरानी ने अपना नौलखाहार दाई के गले मे पहिना दिया। दाई फूली न समायी।

बूआ बोली—"बुढिया लगती तो बडी अच्छी है, एक मोरी चन्द्रिका की और कमी है नही पूरी दुलहिनि सी लगती।"

अब बुढिया ने दो तीन बार छुरी को देखा फिर दोनो डोराओ के बीच से नाल को शीघ्रता से काट दिया। कटे नाल को लेकर उसमे द्रव्य रख कर घर के आंगन मे गड्ढा खोद कर गाड दिया। नाभि से जो नाल लगा रह गया था उसमे एक अमन्त्रित मृदुल रेशम का डोरा बांधकर उसे लालजी के गले में इस प्रकार ढीला बांध दिया मानो पीला हार पहिना दिया हो। तब तक

बूआ जन्म घुटी तैयार करके ले आयी। चमची से शनैः शनैः लालजी के मुख मे डालने लगी। लालजी मुँह बनाने लगे, इधर-उधर छटपटाने लगे। उन्हे घुटी-फुटी से क्या काम वे तो माखन मिश्री के खवैया है, किन्तु अब तो बालक बने हैं। ससार को नचा रहे थे, अब स्वय नाचना होगा। ये लुगाइयाँ जैसे रखेंगी वैसे रहना होगा, जो खिलावेंगी खाना होगा; प्रेम का बन्धन होता ही ऐसा है।

फिर दाई ने कहा—"नन्दरानी! बच्चे के मुख मे चूची देना अब तो दूध उतर आया होगा। अभी घुटी पी है, कुछ देर मे देखना पीता है या नही।" यह कह कर लालजी को माता के पलग पर सुला दिया। लालजी ने आँखें बन्द कर ली। आँखें क्यो बन्द कर ली जी? सम्भव है सोच रहे हो, आगे अब क्या करना है। अभी तक मैंने तो एक रोने की लीला की। और सब तो ये बाबा भैया, बूआ, ताई, दाई, और व्रज की लुगाइयाँ ही करती रही। अब मुझे भी कुछ करना चाहिये। यही सब सोचते-सोचते लालजी झपकियाँ लेने लगे।

नन्दरानी का शरीर स्थूल था। इस कारण स्तन कुछ बडे-बडे थे। अब तो मातृस्नेह के कारण वे दूध से भर गये थे, इस लिये परस्पर जुड से गये थे। उनके नितम्ब अति स्थूल थे अतः सम्पूर्ण शैया को घेर कर पडी थी, उस समय उनके पास संयोग से कोई था नही, स्तन दूध से भर रहे थे, माता का स्नेह उमड रहा था। समीप ही लालजी झपकियाँ ले रहे थे कि इच्छा हुई बच्चे को दूध पिलाऊँ। इसलिये उन्होने लालजी को उठाया पहिले कभी बच्चा हुआ हो, तो दूध पिलाना जानती। उन्होने अपने बडे-बडे लम्बे दुग्ध से भरे सुपुष्ट स्तनो को आगे किया, लालजी को टेढा किया और लेटे ही लेटे उनके मुख मे स्तन

दे दिया। ये नटखट देव तो दूध के प्रेमी ही ठहरे टेढ़े होकर चुसुर-चुसुर करके दूध पीने लगे। इतने में ही उपनन्द संनन्द की स्त्रियाँ आ गयी और आश्चर्य चकित होकर बोलीं—"हाय! नन्दरानी, बच्चे को कहीं ऐसे दूध पिलाती हैं, ऐसे पिलाने से तो बच्चे-के अंग टेढ़े हो जायंगे। बैठ कर गोदी में लेकर, हाथ का सहारा देकर, घोंटू को उठा कर तब सुख पूर्वक बच्चे को दूध पिलाया जाता है।" यह सुन कर नन्दरानी उठ कर बैठ गयीं। वे लज्जित हुईं, अपने स्तन को लालजी के मुख से निकाला। दूध बह कर बाल लाल के वक्षःस्थल पर बहने लगा। माता के कज्जल मिश्रित अश्रुओं का जल भी उसके साथ ही बहने लगा। मानों गंगा जमुना का संगम वक्षःस्थल पर हो रहा हो और बाल मुकुन्द अपने छोटे से शरीर को अक्षयवट के पत्र पर हिला रहे हों।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता की तनिक-सी भूल से ही हमारे ये नटनागर तीन स्थानों में टेढ़े हो गये। आपने देखा होगा, जब भी ये खड़े होते हैं इनकी गरदन झुक जाती है। कटि भी टेढ़ी हो जाती और टेढ़ी टाँग तो इनकी प्रसिद्ध ही है। जब खड़े होंगे तब टेढ़े ही खड़े होंगे। शरीर ही टेढ़ा हो सो बात नहीं। टेढ़े टाँग वाले इन देवता जी की सभी बातें टेढ़ी हैं। चितवन टेढ़ी, चलन टेढ़ी, उठन टेढ़ी, बैठन टेढ़ी, वाणी टेढ़ी, लकुट टेढ़ा, मकुट टेढ़ा, स्वभाव टेढ़ा, कहाँ तक बताऊँ टेढ़े की सभी वस्तुएँ टेढ़ी ही टेढ़ी हैं। इनकी टेढ़ी चितवन किसी के हृदय में चुभ जाती है, तो फिर निकलती नहीं। हाय! सीधी यशोदा के यह कैसा टेढ़ा बेटा हुआ। अपने टेढ़ेपन से इसने सबको चक्कर में डाल रखा है। जो कहते हैं—"हैं" उनको भी चैन नहीं। कैसा है सगुण है या निर्गुण है लोग है या लुगाई है बेटा है या भाई है। पति है या यति है। आस्तिक तो इसी चक्कर में पड़े हैं। नास्तिक कहते

हैं, नहीं है नहीं है। क्यों नहीं है इसी की युक्ति देते-देते वे पागल हो जाते हैं। अरे, जो नहीं है, उसके पीछे तुम व्यर्थ क्यों पड़े हो। नहीं है समाप्त हुआ, किन्तु इस टेढ़े का चक्कर है ही ऐसा टेढ़ा। किसी प्रकार सन्तोष नहीं, चैन नहीं। सो महाराज! इस टेढ़ी टाँग वाले के कभी सामने न आना चाहिये, इसके सम्बन्ध की कोई बात भी न कहनी चाहिये। मौनी बन जाना चाहिये। यदि कुछ बात मुँह से निकाली, समझ लो फँस गये चक्कर में। यह मीठी सीधी सादी खीर नहीं है, बड़ी टेढ़ी खीर है, क्योंकि टेढ़े होकर इसने अपनी माँ का क्षीर पिया था। इस-प्रकार मुनियो! श्रीकृष्ण जन्म के उपलक्ष्य में नन्द जी ने स्नान दान तथा संस्कार आदि कराये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूत जी! नन्दबाबा ने इतने दान, इतने खटराग क्यों किये? प्राकृतिक नियम है, माता-पिता के रजवीर्य मिलने से बच्चा होता है, हो गया। अब उसके लिये इतना झंझट करना यह समय का दुरुपयोग नहीं है?"

यह सुन कर सूतजी हँस पड़े और बोले—"हाँ, महाराज! जो लोग शरीर को ही सब कुछ समझते हैं, वे नास्तिक ऐसा ही कहते हैं। वे बाह्य शुद्धि को ही शुद्धि कहते हैं। नहा लिये, वस्त्र सफेद पहिन लिये शुद्धि हो गयी। भीतर की शुद्धि वे जानते ही नहीं। नहा लेना, शुद्ध स्वच्छ धुले कपड़े पहिन लेना। यह भी शुद्धि है, किन्तु सब की शुद्धि एक-सी नहीं होती, एक प्रकार से भी नहीं होती। सब की शुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। अशुद्धि तो पृथ्वी, तन, मन, धन, इन्द्रियों तथा सभी वस्तुओं में हो जाती है। उनकी शुद्धि के भी भिन्न-भिन्न प्रकार हैं।"

शौनकजी बोले—"पृथ्वी की शुद्धि कैसे होती है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! जैसे माघ के महीने में लक्षों

आदमी आकर एक महीने रहकर सगम के समीप मल मूत्र द्वारा अशुद्ध कर देते हैं। माघ बीतने पर महीने बीस दिन में भूमि स्वय पुन शुद्ध हो जाती है। अत भूमि की शुद्धि मे काल की अपेक्षा है। काल पाकर भूमि शुद्ध हो जाती है।"

शौनक जी ने कहा—"जल की शुद्धि कैसे होती है?"

सूतजी बोले—"बहुत होने से मिल जाने से या औषधि आदि डालन से होती है। जैसे—एक छोटे से गड्ढे मे जल भरा है, अशुद्ध है। वही वर्षात मे बढ जाय शुद्ध हो गया। किसी के हाथ का हम जल नही पीते वही दूध मे दही मे मिल जाय शुद्ध हो गया। कोई नाली मोरी का जल है उसे स्पर्श भी नही करते गङ्गाजी मे मिल गया, शुद्ध हो गया।"

शौनक जी ने कहा—"और भी वस्तुओ के शुद्धि के प्रकार बताइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! कहाँ तक बतावें शुद्धि का तो बडा विस्तार है, देश काल तथा पात्र के अनुसार शुद्धि के भी असख्यो भेद हैं। ऊपर का शरीर स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। अपवित्र पदार्थ मलने, धोने, छीलने, तपाने जल तथा मिट्टी से शुद्ध हो जाते हैं। लोटे को लेकर शौच गये। आकर तीन बार मिट्टी से मल लिया, जल से धो लिया, शुद्ध हो गया। पीतल आदि की थाली लोट मे खा पी लिया मिट्टी लगाकर मल दिया शुद्ध हो गया, सुवर्ण चाँदी के पात्रो में मिट्टी लगाने की भी आवश्यता नही, वे केवल जल से धो देने से ही शुद्ध हो जाते हैं। मिट्टी का सकोरा पानी पीने से अशुद्ध हो गया, उसे अग्नि मे तपाकर लाल कर लो, फिर पीने योग्य हो गया। काठ की कठौली है, खाने से अशुद्ध हो गयी, उसे छील दो शुद्ध हो गयी। धान्य धूप मे सुखा दो शुद्ध हो गये। इस प्रकार काल

सम्बन्धी शौच से कोई जल मिट्टी के सयोग से शुद्ध हो जाते हैं।

गर्भादि की शुद्धि सस्कार से बतायी है। जात-कर्म नाम-करण आदि सस्कार हुए प्रसूत सम्बन्धी अशौच समाप्त हो जाते हैं। रजस्वला तीन दिन अशुद्ध होती है। चौथे दिन सिर से स्नान कर लेने पर अपने आप शुद्ध जो जाती है। द्विजो के बालक जब तक यज्ञोपवीत नही होता शूद्रवत् माने जाते हैं, जहाँ उपनयन वेदारम्भादि सस्कार हुए उनकी द्विज सज्ञा हो जाती है। इन्द्रियाँ तप के द्वारा शुद्ध हो जाती हैं। द्विजातीय पुरुष यज्ञो के द्वारा विशुद्ध बन जाते हैं। धन की शुद्धि का एक मात्र उपाय है दान। दान के बिना धन की शुद्धि नही। जिस धन मे से दान के लिये नही निकाला जाता वह मल के समान है, उसको बिना दान किये जो खाता है, वह पाप को खाता है। चित्त की शुद्धि सन्तोष से होती है। जिसे सन्तोष नही, उसे चाहे जितना धन मिल जाय, वह सदा चिन्तित और दुःखी ही बना रहता है। चित्त की प्रसन्नता सन्तोष-ही सबसे श्रेष्ठ धन है। आत्मा की शुद्धि आत्म विद्या से ज्ञान से होती है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह तो आपने बड़ा गहन विषय छेड दिया। हमे तो आप श्रीकृष्ण जन्म की कथा ही सुनावें। कैसी सरस कथा कह रहे थे, अब आप कर्म-काड को ले पड़े।"

सूतजी ने कहा—"अजी, महाराज! आप ही तो छेड देते हो। अब आप आज्ञा देते हैं, तो मैं श्री कृष्ण-जन्म की ही अत्यन्त सरस कथा कहता हूँ बड़ी लच्छेदार, आप ध्यान पूर्वक सुनें।"

छप्पय

तपतैं इन्द्रिय शुद्ध होहिँ भसतैं सब द्विजगन।
हरि भर्कानतैं देश दानतैं होहि शुद्ध धन॥
सब वस्तुनि की शुद्धि विविध विधि वेद बताई।
नदनँदन के जन्म समय विधिवत करवाई॥
देशकालवित नदको, दान देत नहिँ भरहि मन।
आवें दशहूँ दिशनितैं, मागध बन्दी सूतगन॥

श्री नंदजी द्वारा सबका दान-मान से सम्मान

[८४२]

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावें ।
नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावें ॥
धुनि भेरी की सुनि सुनत सब जन हरषाये ।
जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये ॥
दूरहितें अति मुदित मन, जय जयकार सुनाइकें ।
आशिष सुतकूँ देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकें ॥

ससार मे सदा दो प्रकार के पुरुष होते आये है, एक श्रमजीवी दूसरे बुद्धिजीवी । वैसे तो श्रमजीवी भी बुद्धि से ही काम करते हैं, किन्तु उन्हे श्रम अधिक करना पड़ता है । इसी प्रकार

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! श्रीनन्दजी के पुत्रोत्सव के समय ब्राह्मण-गण तथा सूत, मागध और बन्दी-जन सुन्दर मगल युक्त वचन बोलने लगे । गायक लोग गान लगे तथा भेरी दुन्दुभि आदि बाजे स्वय बार-बार बजने लगे ।"

बुद्धिजीवी भी कुछ न कुछ श्रम करते ही हैं, किन्तु उन्हे बुद्धि से विशेष काम लेना पडता है। श्रमजीवियो मे भी दो भेद होते है, एक कृषि वाणिज्य गो-रक्षण आदि समाजोपयोगी कार्य करने वाले, दूसरे सेवा द्वारा निर्वाह करने वाले। इसी प्रकार बुद्धि जीवियो मे भी एक मनोरजक ललित कलाओ द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले, दूसरे धर्म, समाज, राजनीति द्वारा समाज को सुव्यवस्थित रखने वाले। ये परस्पर मे मिलकर काम करते हैं, तो समाज का सगठन सुदृढ और सुन्दर रहता है। जब ये परस्पर मे एक दूसरे को सहयोग नही देते तो समाज मे विघटन हो जाता है। श्रमजीवी श्रम द्वारा धन उपाजन करते है। सेवोपजीवी सेवा करते हैं, और पुरस्कार द्वारा अपना जीवन बिताते है। विद्योपजीवियो का कार्य श्रमजीवी या शासको की सहायता से ही चलता है। सबका समय बँधा रहता है। कृषक जब खेती काटता है, तो सभी सेवोपजीवी पहुँचते हैं सबको वह देता है। ६ महीने वे बिना कुछ लिये सेवा करते हैं। विवाह, पुत्रोत्सव तथा अन्य उत्सव पर्वों पर वे पारितोषिक पाते हैं। एक के उत्सव मे सभी सम्मिलित होते हैं यही सामाजिक एकता है, इसी का नाम सम्मिलित परिवार है। आज श्रम किया, आज ही हम उसका वेतन माँगते है, यह सम्मिलित समाज का नियम नही। यह स्वार्थ पूर्ण स्नेह रहित समाज का जीवन है। इसमे सरसता नही, सहयोग नही, सद्वृत्तियो का विकास नही, उत्साह और एक दूसरे के सुख दुख मे सुखी दुखी होने का भाव नही। यह ममता और स्नेह से रहित स्वार्थ परायण नागरिक जीवन है। ग्राम्य जीवन इससे अधिक सरस और सुख प्रद हैं यह सरसता विवाह तथा पुत्रोत्सव के समय अत्यन्त बढ जाती है एक की प्रसन्नता मे सभी प्रसन्न होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नंदराय के लाला हुआ है। यह बात सम्पूर्ण व्रजमंडल में रातो रात फैल गयी। सभी लोग आशा लगाये बो बैठे ही थे। रात्रि भर भेरी, नगाड़े तथा दुन्दुभियो की तुमुल ध्वनियाँ सुनकर ही सबने समझा लाला के जन्म का ही महोत्सव है। सभी बधाई देने गोकुल की ओर दौड़े। मार्ग में उन्होने देखा, सहस्रों ब्राह्मण लाखों गोओं को लिए जा रहे हैं। सब बड़े उत्साह से पूछते—"क्या व्रजराजजी के लाला हुआ है ?"

ब्राह्मण कहते—"लाला नहीं हुआ है; सर्व सुख समृद्धि देने वाला हुआ है। तुम जाओ, जो इच्छा हो माँग लाओ। कोई भी वहाँ से निराश या रिक्त हस्त न लौटने पावेगा।"

यह सुनकर याचक तथा सूत, मागध बन्दी तथा अन्यान्य विद्योपजीवी जन परम प्रमुदित होते। सब बड़े उत्साह के साथ, अत्यन्त उमंग आह्लाद और शीघ्रता के साथ, गोकुल की ओर दौड़े जाते।

नंदजी बड़े-बड़े गोपों से घिरे चौपाल पर बैठे थे। मंच बिछे हुए थे, जाजिम, गलीचे, तकिये पड़े थे। बड़ी-बडी जाजिमें बाहर बिछी थी, इतने मे बड़ी पगड़ी बाँधे लम्बा अँगरखा पहिने, तिलक छापा लगाये, दो चार बाल बच्चों के सहित पोथी पत्रा बाँधे सूतजी वहाँ आ गए।

नंदजी ने कहा—"आओ ! आओ ! महाराज ! आप कौन हैं ? कहाँ से पधारे।" आगत वृद्ध ने नंदजी का जय जयकार किया और बोला—

दोहा—गोपेश्वर व्रजराजजी ! मैं तुम्हरो हूँ सूत।
दौरयो आयो सुनत ही, भयो तुम्हारे पूत॥

नंदजी ने कहा—"धन्य-धन्य महाराज कुछ सुनाइये आप तो पौराणिकी गाथा सुनाया करते हैं सुनाइये कुछ।"

यह सुनकर सूत सुनाने लगा—

सवैया

ब्रजराज ! कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिक अपनाये।
सुनिके सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये॥
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
ब्रजमहँ विहरें घुंघची पहिरे, वर देहु जिही तनु धूरि लगाये॥

नन्द बाबा ने कहा—"सूतजी ! कुछ हमारी समझ में बात आयी नही। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न पृथ्वी, हाथी, घोडा, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न, वस्त्र आप जो चाहे माँग लें।"

यह सुन कर आँखो में आँसू भरके सूत बोला—"महाराज ! मैं आपके लाला को जानता हूँ वह कौन है ? जीवन भर मैंने पुराणो में यही पढा है। माँगते-माँगते बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ, कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसी के सामने हाथ न पसारना पड़े यही अन्तिम याचना हो।"

नन्दजी ने उत्साह के साथ कहा—"हाँ, हाँ, ठीक है। इतना धन माँग लो, कि जीवन भर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरे के यहाँ याचना करने की क्या आवश्यकता है।"

सूत बोला—"आप तो महामना हैं, उदार शिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है।"

सवैया

हे व्रजराज ! करूँ नहिं लाज समाज जुरयो जिह फूहरि नारी।
सोवे सिदौसि अवेरी उठे नित देइ परोसिनिकूं गिनि गारी॥
आवत देखि पिछारि परी चटकीलि रँगीलि टरी नाहिं टारी।
घरवारि हमारि हिलावति हार चलावति सैन मँगावत सारी॥

यह सुन कर नन्दजी बोले—"मागध जी तो बूढ़े दीखते हैं, किन्तु मागधिनि तो अभी छरहरी बनी हुई है। छत्तीस छोरी और एक छोरा जनिके भी अभी जैसी की तैसी बनी हैं। अच्छा, भैया मागध जी की घरवारी को सुन्दर-सी बनारसी रेशमी सारी, गोटावारी दिला दो। और भी जो ये हार, हमेल, कड़े, छड़े नकबेसर, बाजूबंद जो मांगे वह दिला दो।"

फिर नन्द जी ने पूछा—"भैया, इन ऊँटो पर क्या लदा है ?

जगा बोला—

दोहा—वही पुरानी सबनिमहँ, सब गोपनिके वंश।
आप सबनि के मुकुट मनि, गोपवश अवतंश॥

नन्दजी ने उत्सुकता के साथ कहा—"अच्छा हमारे वंश को सुनाओ।"

इतना सुनकर बड़े हर्ष के साथ जगा ने बड़े ऊँट से बहुत-सी बहियों को उतारा कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नो को पलट कर उसे उठा कर नन्दबाबा के समीप आया और उसमे से पढते हुए बोला—

छप्पय

प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप 'चन्द्र सुरभि जी'।
'भीमक' तिनके पुत्र भये तिनि 'महाबाहु जी'॥

तिनिके सुत 'गोपेश' 'काननेचर बडभागी।
'कंजनाभि' तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥
कजनाभिके पुत्र सुठि, 'वीरभानु' आभीरवर।
'कृती' तनय तिनि गोपपति, धर्मधीर' सुत धीरधर॥

छप्पय

धर्मधीर के 'भद्रध्वा' तिनि 'देवराज' सुत।
देवराज के 'नवल' नवल के द्वै सुत श्रीयुत॥
'काननेन्दु' सुत द्वितिय पुत्र 'जयसेन' भये तिनि।
देवमीढ़ मधुरेश सग ब्याही कन्या जिनि॥
ताके सुत परिजन्यजी, नानाकी गोदी गये।
तिनिके अति सुदर सुघर, पुत्र पांच पैदा भये॥

दोहा

ते पांचो ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनन्द।
नन्दन अरु सन्नन्द जी, अभिनन्दन श्रीनन्द॥

छप्पय

मातामहकी गोद गये गोकुलमहँ गोपति।
वृद्ध भये परिजन्य गये तप हित हर्षित अति॥
गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये।
सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये॥
इतनो जानू वश मैं, नारायण किरपा करो।
वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदा की भरो॥

यह सुनकर नदजी बड़े प्रसन्न हुए और सब लोगों को सुना कर बोले—"अरे, भैया ! यह तो हमारा वश जानता है। इसे जो माँगे सो तुरन्त दो। गौएँ दो, वस्त्र दो। आभूषण दो, द्रव्य दो। जो माँगे उससे दुगुना चौगुना दो।"

इतने मे एक आदमी खिरकीदार पाग बाँधे हुए बहुत-से बाल बच्चो को साथ लिये हुए आया, नदजी ने उनसे पूछा—"अरे, भाई तुम कौन हो।" उनमे से एक छोटा सा छोरा बोला—

तुकबन्दी—मे हूँ तुमरो बन्दी, पहिने बगलबन्दी।
मिरजई मेरी गन्दी, खाऊँ सकरकन्दी॥
यह छोरा छरछन्दी, भैया है बहु धन्धी।
तेरो सुत आनन्दी, रच्यो जगत् फरफन्दी॥
दादो मेरो अन्धी, बाप बन्धो है बन्दी।
चाहूँ सोना चदी, और मिठाई कलाकन्दी॥

हँसकर नदजी बोले—'अरे, भाई तेरी तुकबन्दी लगी नही। तुम लोग रायभाट हो न ?'

यह सुनकर उनमे जो सबसे बडा था, वह बोला—"हाँ, अन्नदाता हम रायभाट ही हैं। हमारा काम ही है, तुरन्त रचना करके तुरन्त कवित्त कहना। यह अभी बच्चा है अवस्था का कच्चा है, बात का सच्चा है, यदि श्रीमान् की आज्ञा पाऊँ, तो मैं भी स्वरचित कवित्त सुनाऊँ ?"

नदजी ने कहा—'हाँ भाई, सुनाओ।"

तब वह भाट कहने लगा—

कवित्त

नदको दुलारो सुत प्यारो ब्रजवासिनि को,
कोई कहे कारो परि जग को उजारो है।

वेद नहिं पायो भेद ताही को नाल छेद,
आगन मे गाढि तापै अगिहानो वारो है ।।
भक्तनिको जीवन धन गोपिन को प्राण मन,
बालनिको बन्धु धेनु धन को रखवारो है ।
यशुमतिको लाल व्रज गोपिनको ग्वाल बाल,
दर्शनते निहाल होहुँ सरवसु हमारो है ।।

नन्दजी बोले—"भैया ! तैने तो मेरे लाल की बडी उपमा बढायी । बडी सुन्दर कविता सुनायी । अच्छा तू चाहे जितना धन ले जा छकडा भरले जा, चाहे जितनी गौवें हकवा ले जा ।"

नन्दजी यह कह ही रहे थे, कि तबला, तमूरा ढोलक, मजीरा, सितार इसराज, मृदङ्ग, चङ्ग, बासुरी वीणा आदि विविध वाद्यो को लिये हुए बहुत से गायक आ गये । गायको को देखकर सबके चित्त प्रसन्न हो गये । सभी ने नन्दजी का जय जयकार किया । उन्हे गलीचो पर बिठाया । समस्त गोकुल के गोप जुट आये । बालक हँसने खेलने और किलकारियाँ मारने लगे । बड़े बड़े गोप उन्हे डाँटने फटकारने लगे । बडा सुन्दर समाज लग गया । नन्दजी ने बडी नम्रता से कहा—"हाँ गायको कुछ सुनाओ । इन उपस्थित नर-नारियो के मन को रिझाओ, अपना कला कौशल दिखाओ, इन सबकी उत्सुकता मिटाओ और अपने-अपने भावो को प्रकटाओ ।"

नन्दजी की आज्ञा पाकर सब साज एक स्वर ताल मे मिलाये जाने लगे । तबले के ऊपर हथौडी पडने लगी, सारङ्गी के कान ऐंठे जाने लगे, वीणा के तार झनझनाने लगे तानपूरा की खूँटी खेंची जाने लगी । बडी देर तक खट-खट, तिन-तिन, नान-तान, होती रही । जब सब साज एक स्वर मे मिल गये तो एक बूढे-

से बाबा गाने लगे। उनका स्वर सुरीला था, वाणी आकर्षक थी, गान में सरसता थी। बड़ी देर तक आ आ करने के पश्चात् गाने लगे—

पद

नन्द घर आज भयो आनन्द।
मातु यशोदा लाला जायो, ज्यो पूर्नोने चन्द ॥१॥
गोपी गोप गाय गायक-गन, सब हिय सरसिज वृन्द।
नन्दनंदन रवि उदित भये हिय, विकसे पकज वृन्द ॥२॥
वसुधा मुदित समीर बहत वर, शीतल मन्द सुगन्ध।
गरजत मन्द-मन्द घन नभमहें प्रकटे आनंद कन्द ॥३॥
माया बन्धु सिन्धु सब सुखके, स्वयं सच्चिदानन्द।
प्रभुके प्रभु विभु विश्वविदित वर, काटें यमके फन्द ॥४॥

नन्दजी ने कहा—"धन्य! धन्य! साधु! साधु! बहुत सुंदर राग है, कठ बड़ा सुरीला है। और कोई पद गाओ।"

इतना सुनकर उसमें से एक तिलक छापा वाले बूढ़े-से पंडित जी अपनी सफेद दाढ़ी को हिलाते हुए, पोपले स्वर से राग अलापते हुए बार-बार तानपूरा के कानों को ऐंठते हुए, नेत्रों से पखावज वालों को संकेत करते हुए चकित-चकित दृष्टि से इत-उत देखते हुए, दृष्टि द्वारा ही औरो को कुछ बताते हुए, गाने लगे—

पद

जसोदा कैसो लाला जायो।
कोई कहे कुसुम अरसी सम, अंजन अपर बतायो ॥१॥
कोई दूर्वा घन सम शोभा, उत्पल द्युति कहि गायो।
कोई कहे जनम नहिं जाको, छिपि मधुवनतें आयो ॥२॥

कोई कहे ब्रह्म को बाबा, वेदहु भेद न पायो।
कैसो कहे कहत सकुचावत, नहिं हम दरशन पायो ॥३॥
गोविंद गोकुल कुँवर गोपपति, गोपीश्वर कहलायो।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, चरन कमल सिर नायो ॥४॥

नन्दजी हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया! इन्होने तो बड़ी तान भिड़ायी। यह सत्य है, जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि। अच्छा भैया, इन सबको एक-एक सिरोपा दो, इनकी घर-वालियों को तोहर दो। मणिमुक्ताओ के हार दो, सोने की मालाएँ दो, सुवर्ण दो, गौएँ दो और भी जो माँगे वह दो।" ऐसा कहकर वे गोपो को समझाने लगे। इतने मे और भी याचक आ गये।"

आगत किसी याचको मे से किसी ने कहा—'हमारी धर्म में निष्ठा बनी रहे, हमारे धार्मिक कृत्य भलीभाति सम्पन्न हो सकें, इसका प्रबन्ध कर दें।" नन्दजी ने कहा—"ऐसा ही होगा।"

बहुतो ने कहा—"हम निर्धन हैं, हमे विपुल धन दिला दें, हमारे सब दुःख दारिद्र को दूर कर दें। हमे अब फिर धनके लिये तरसना न पड़े।"

नन्दजी ने कह दिया—"तुम्हे जितना चाहिये धन ले जाओ। मेरे यहाँ धन की कमी नही, आज मेरा कोषागार सबके लिये खुला है।"

किसी ने कहा—"महाराज, मेरा विवाह नही होता। विवाह के बिना आदमी का जीवन निरर्थक है। नित्य चूल्हे मे मूड़ देना पड़ता है, आग फूँकते-फूँकते आँखें लाल हो जाती हैं। फिर जो चूड़ियों की खनखनाहट के साथ बनी रोटियों में, आनन्द आता है, वह खाली हाथो से बनाई दाढ़ी मूछों को खुजाते हुए सेकने

वाली रोटियो में आनन्द कहाँ ? कही से थके हुए आवें घर में बहू न हो तो कौन उठकर पानी दे। कौन प्रेम की मीठी-मीठी दो बातें करे ? ब्रजराज ! बहू के बिना क्या-क्या कष्ट होते हैं, इसे आप क्या जानो, कोई जान ही कैसे सकता है, जिस पर बीतती है वही जानता है, सो आज अपने पुत्र के जन्मोत्सव के समय मेरा विवाह करा दो मुझे एक सुन्दर-सी बटुआ-सी बहू दिला दो। जो छम्म-छम्म करके इधर से उधर फिरे मेरे शान्त सूखे घर में रुनझुन-रुनझुन करके सरसता संचार करे, मेरे उजड़े घर को फिर से बसा दे, मेरे सूखे हृदय को फिर से सरसा दे। मुझे भोजन का स्वाद चखा दे और मेरे पितरो को सन्तान के द्वारा तार दे।"

यह सुनकर नन्दजी हँस पड़े और बोले—"भैया ! बहू कोई कुम्हार के चाक पर तो बनती नही। जो मै तुम्हे मँगाकर दे दूँ। तुम कही से अपनी साँठ गाँठ लगाओ। उसमे जितना धन लगेगा उतना हम देंगे।"

अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए वह बोला—'जय हो, ब्रजराज की सदा जय हो। महाराज, धन के ही बिना विवाह रुका हुआ है। धन हो, तब तो मैं अपने नख नखका विवाह कर लूँगा। आपने मेरा बडा भारी दुःख दूर कर दिया। आपका बच्चा युग-युग जीवे। आपने मेरा एक विवाह करा दिया। आपके बच्चे के हजार विवाह हों।"

यह सुनकर नन्दजी हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया ! एक बहू को ही सम्हालना कठिन हो जाता है, तू मेरे बच्चे के हजार विवाह का आशीर्वाद दे रहा है। यह आशीर्वाद अच्छा नहीं। बहुत-सी स्त्रियाँ होने से कोई कान खीचती हैं कोई नाक खींचती है, कोई चोटी खीचती है।"

उसने कहा—"महाराज ! देखिये, मैं ज्योतिष भी जानता हूँ, आपके बच्चे के सोलह हजार एक सौ आठ प्रकट विवाह होंगे और अप्रकट विवाहों की तो कोई संख्या ही नहीं।"

नन्दजी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"नारायण ! नारायण ! अरे, सोलह हजार एक सौ आठ विवाह। भैया, यह कैसी सुनायी।"

इस पर एक दूसरा बोला—"अजी, महाराज ! यह तो पागल है, बहू की चिन्तना करते-करते इसके मस्तिष्क में बहू ही बहू भर गयी हैं। आप मेरी सुनिये मुझे न तो घर चाहिये न धन, न बहू चाहिये न बाल बच्चे। मेरी आँख में तो ऐसा अंजन लगा दीजिये, कि यह नाम रूपात्मक प्रपञ्च कुछ दिखायी न दे। मैं ही मैं एक अद्वितीय शेष रह जाऊँ।"

इस पर एक बोला—"महाराज ! इसे गोवर्धन की गुफा में बन्द कर दो, वहाँ अद्वितीय होकर पड़ा रहेगा। मेरे लिए तो आप ऐसा प्रबन्ध कर दें, कि नित्य यमुना-स्नान मिले, करीलनि की कुञ्ज में निवास हो। लोटने के लिये व्रज की रज मिले, खाने के लिये इन व्रजवासियों के झूठे कूठे टुकड़े मिलें। पहिनने के लिए इनके उतारे चिथड़े मिल जाया करें। तुम्हारे लाला के नित्य दर्शन मिल जायँ। उनके साथ लकुट लेकर गौओं को चराने जाऊँ। व्रजवासियों के मुख से उसी के गीत सुनने को मिलें, मुख से उसी का नाम उच्चारण करने को मिले, उसी की कहानी सुना करूँ उसी को देखा करूँ। अपनी खिरक में मुझे गौओं के गोबर उठाने की सेवा मिल जाय। लालजी का जो कुछ जूठा-कूठा बच जाया करे, वह मुझे खाने को मिल जाय।"

नन्दजी ने कहा—"अजी, ब्राह्मण देवता ! आप यहाँ कैसी

उल्टी गगा बहा रहे हैं, हम ठहरे गोप आप ठहरे ब्राह्मण, हम आपको अपना जूठा कैसे दे सकते हैं।"

ब्राह्मण बोले—"इस गोप कुमार के जूठे को जो जूठा बताता है, वह स्वय झूठा है। यह सम्पूर्ण जगत् उन्ही का तो उच्छिष्ट है। जो उनका जूठा समझकर इसका उपभोग करता है, वह कर्म बन्धनो मे लिप्त नही होता। फिर उसे नाक दबाने या गुफा मे घुटने की आवश्यकता नही रहती तुम्हारे लाला से जिसका सम्बन्ध हो गया। उसे फिर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की भी इच्छा नही रहती।"

नन्दजी बोले—'महाराज! न जाने आप क्या कह रहे हैं। यह तो वेद शास्त्रो की बात हैं। मैं तो वेद शास्त्र पढा नही। जीवन भर लाला का ही चिन्तन करता रहा, सो आप सब ब्राह्मणो के आशीर्वाद से मुझे यह अवसर देखने को प्राप्त हुआ। मेरा सब कुछ आपका ही है आप जो चाहो सो ले लो। खिरक आपका है चाहे गौओ को दुहो, चाहे गोबर उठाओ। मैं तो अपने लाला के लिये सब कुछ कर सकता हूँ सब कुछ देख सकता हूँ।"

उसने कहा— नन्दजी! आपने सब कुछ कर लिया। तुम्हारे लाला का चिन्तन ही सार है और सब तो निस्सार है, असार है। जिसने तुम्हारे लाला को नही जाना उसने कुछ भी नही जाना।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! इस प्रकार नन्दजी निरन्तर धन को लुटाते रहे। जो भी आता उसे मना नहीं करते। अब जब लक्ष्मी का पति ही बेटा बन गया तो बेटा की बहू तो अपनी आज्ञा मे ही रहेगी। उससे चाहे गोबर उठवा लो या पानी भरा लो। व्रज तो लक्ष्मी के क्रीडा का स्थान हो गया। यह तो मैंने अत्यन्त सक्षेप मे व्रजराज जी के दान का प्रसङ्ग कहा। अब

लालाजी के जन्म के उपलक्ष्य मे सम्पूर्ण ब्रज मे कैसा उत्सव मनाया गया, उस प्रसङ्ग को सुनिये।"

छप्पय

अति आनंदित नंद सबनि को स्वागत कीन्हों।
जाने जो जो करी याचना सो सब दीन्हों॥
बार बार ह्वै मुदित गीत लाला के गावें।
गोप गान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥
नंदलाल के जन्म को, घर घर में उत्सव भयो।
मानो ब्रज मंडल सकल, मंगलमय ही बनि गयो॥

व्रजमण्डल में महामहोत्सव

[८४३]

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥
(श्री० भा० १० स्क० ५ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

सकल राज-पथ गली गिरारे घर पिछवारे ।
सबनि स्वयं मिलि सींक सोहनी लाइ बुहारे ॥
चन्दन को छिरकाव इतर करपूर मिलायौ ।
करि केशरि की कीच सबनि निज घर लिपवायौ ॥
टाँगी बन्दनवार घर, घर घर सुघर बनाइकें ।
बिच-बिच कलियाँ कुसुम की, पल्लव ललित लगाइकें ॥

जिसमे सबके मन मे स्वत. ही स्वाभाविक उत्साह हो जाय उसे उत्सव कहते हैं। उत्सव मे बाह्य आभ्यन्तर की मलिनता, अशुचिता, चिन्ता, जडता, शुष्कता तथा कृपणता नही रहती।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण जन्म के उत्सव मे समस्त व्रजमण्डल के सम्पूर्ण घरो के द्वार, आँगन और भी भीतर के भागों को भली प्रकार झाड बुहारकर उनमे छिडकाव किया गया। फिर भाँति-भाँति की चित्र विचित्र ध्वजा पताका तथा मालायें लटकायी गयीं, रग-बिरगे वस्त्रों और पत्तों की बन्दनवारें लगायी गयी।"

चित्त मे उमङ्गें उठने लगती हैं। अशुचिता सुहाती नही। बाहर भीतर के समस्त मलो को जड़ से उखाड फेंकने की प्रवृत्ति होती है। अमङ्गलो के निवारण और मङ्गलमय साधनो को जुटाने की व्यग्रता होती है। जिन वस्तुओ को देखकर मन तथा नयन प्रमुदित हो उन्हें एकत्रित करना और जिनसे चित्त दुखित और चिन्तित हो, उनका निवारण करना यही उत्सव का प्रधान कर्तव्य है। जिस समारोह मे उत्साह नही स्वच्छता नही, उदारता नही, चैतन्यता नही, प्रसन्नता नही, कार्य तत्परता नही तथा स्वागत सत्कार की प्रवृत्ति नही। वह उत्सव, उत्सव नही। वह एक भार टालना है। नाम मात्र करना है, समाज के सकोच तथा लज्जा के निवारणार्थ एक प्रदर्शन मात्र है। उत्सव तो वही है जिसमे सभी एक मन प्राण एक चित्त होकर कार्य करें, अपना सर्वस्व होम देने को तत्पर हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी के लाला होने पर नन्दजी के ही महलो मे उत्सव मनाया गया हो, सो बात नही है। सम्पूर्ण ब्रजमण्डल भर मे श्रीकृष्ण जन्मोत्सव का महा-महोत्सव मनाया गया। सभी ने ऐसा ही अनुभव किया, मानो हमारे ही घर लाला हुआ हो। अपने घर लाला होने पर चाहे इतना उत्सव न भी मनाते, आज तो सभी अत्यन्त ही आनदित थे, ब्रजवासियो के हर्ष का ठिकाना नही था। सभी आश्रम के लोगो ने इस पुण्योत्सव को बडी धूम-धाम से मनाया।"

नन्दलाल का जन्म होते ही ढाढी-ढाढिनि नाई-नाइनि सभी घर-घर मे बुलावा देने दौड पडे। ढाढ़िनि और नाइनें तो लुगाइयो मे जाती और नाई तथा ढाढी लोगो मे जाते। जो सुनते वे ही आनन्द में विभोर हो जाते। अब गोपो ने सोचा—"पहिले घर को सजावें या पहिले बधाई देने नन्दबाबा के द्वार

पर चलें।' फिर सोचा—"नन्दबाबा के जो लाला हुआ है, वह कुछ नन्दबाबा का तो अकेला होगा ही नहीं, वह तो हम सब गोपों का राजा होगा; अतः हम सबका उस पर उतना ही अधिकार है, जितना नन्दबाबा का। यही नहीं हमारा उस पर अधिकार अधिक है। नन्दबाबा तो अब बूढ़े हुए। जीवन भर काम तो हमें उसी से पड़ेगा; अतः पहिले अपने घर को सजा लें, अपने यहाँ उत्सव मना लें, तब नन्दजी के द्वार पर सब मिलकर गाते बजाते नन्दोत्सव करने चलेंगे।" ऐसा सोचकर सभी अपने-अपने घरों को सजाने लगे। सब मिलकर घरों से एक-एक आदमी तो बाहर की सार्वजनिक सजावट में लग गये। घर को स्त्रियाँ लड़के लड़कियाँ तथा अन्यान्य दास दासियाँ अपने-अपने घर को सजाने में व्यस्त हो गये। प्रथम सार्वजनिक सजावट के समाचारों को सुनिये। गोकुल यमुनाजी के कगार पर चन्द्राकार बसा हुआ था। घाट से एक सीधी सड़क दूर तक चली गयी थी। उस बड़ी सड़क के दोनों ओर गोपों की बस्ती थी। बड़ी सड़क में से छोटी-छोटी सड़कें निकली हुई थीं। उन छोटी-छोटी सड़कों में से गलियाँ थीं। गोपों ने मिलकर सड़क को स्वच्छ किया। दोनों ओर सड़क पर केले के खम्भे बाँध दिये, जिनमें फल लटक रहे थे। रङ्ग बिरंगे वस्त्रों की झण्डियाँ बनाकर बाँधी गयी थीं। स्थान-स्थान पर मङ्गल घट रखे थे, जिन पर वस्त्रों में लपेटे श्रीफल रखे थे। वट, पीपर, गूलर, पाकर और आम के पत्रपल्लव उनमें खुरसे हुए थे। चौमुखे दिये उन पर जल रहे थे। स्थान-स्थान पर अगरु कर्पूर घृत और चन्दन का चूर्ण मिलाकर धूप जलायी गयी थी। आम के पल्लवों और अशोक के पल्लवों के बन्दनवार बनाये गये। उनके बीच-बीच में रङ्ग बिरंगे पुष्प लगाये गये थे।

विविध प्रकार की झण्डियों के बीच में वे वन्दनवार ऐसे लगते थे, मानों सड़क के दोनों ओर गोल नही, दो लम्बे इन्द्र-धनुष आकाश से गिर कर केलो के खम्भों पर टिके हों, स्थान-स्थान का सुगन्धित धूम्र ऐसा लगता था, मानों बहुत से कपोत उड़ रहे हो। सड़क इतनी स्वच्छ की गयी थी, कि सुई गिरने पर भी वह तुरन्त दिखाई दे जाय, प्रधान सड़क से जो छोटी-छोटी सड़कें निकली थी, वे भी इसी प्रकार सजाई गयी थी। चौराहो पर विशेष प्रबन्ध था। वहाँ पुष्पो के स्तवक विशेष प्रकार से लटकाये गये थे। पुष्प वाले पौधा के गमले वाटिकाओं में से ला लाकर वहाँ रखे गये थे। चौराहे और बिराहो पर नौबत बज रही थी। वीणा भेरी और तुरही की ध्वनि नौबत की ध्वनि में मिलकर एक विचित्र मङ्गलमय प्रसग की शुभ सूचना दे रही थी। जिनके घर प्रधान पथ के पार्श्व मे थे, उन्होने तो आज सजावट की पराकाष्ठा ही कर दी थी। सबने अपने घर की दीवालों को लाल, पीली, हरी, नीली साड़ियों को लटका-लटका कर ढक दिया था। सबकी सम्मिलित भीतें ऐसी लगती थी मानों गोकुल नगरी दो रूप रखकर पञ्चरङ्गी साड़ी पहिने गोकुलेश की प्रतीक्षा मे सजी-बजी खड़ी हो। अपने-अपने द्वारो के सम्मुख बेलें बनाकर ऐसे वितान बनाये, मानों ये सदा से ही ऐसे बन रहे हों। उनमे फल लटकाये, पुष्प लगाये बड़ी-बड़ी ध्वजा पताकायें बनायी। मङ्गल घट, दूर्वा, अक्षत, धूप, लाजा, दधि, हरिद्राचूर्ण, श्रीफल, पुङ्गीफल, कदलीफल, बतासे तथा अन्यान्य मङ्गल की सामग्रियाँ रखी गयी। स्त्रियो ने घर-घर मे थापे लगाये। गेरू से घरों को रँगा, चौक पूरे और भाँति-भाँति के बेल बूटे लगाये। स्त्रियाँ इधर से उधर व्यस्त भाव से दौड़ रही थी। कोई गोबर लाकर उसमें गेरू मिलाकर आँगन को

लीप रहीं थी। कोई केशर को चन्दन मे घिसवाकर उसकी कीच से ही आँगन को लीप रही थी। कोई बूढी कहती—'अरी, बहू मङ्गल की सभी वस्तुओ को लाकर रख दे। चौमुखा दीपक जोर ले उसे घर के द्वार पर रख दे। देख रम्मू की महतारी ने अपना घर कैसा सजाया है तैने अभी तक कुछ नही किया। बेटा ऐसा घर को सजा, जिससे सबकी दृष्टि हमारे ही घर पर पडे।"

बहू कहती—'सासूजी! क्या करूँ, वे तो सबके साथ बाहर की सजावट मे लगे हैं तुम्हारे छोटे लालाजी का पता ही नही जाने कहाँ कबड्डी खेल रहे हैं।"

इतने मे ही एक हँसमुख छोकरा-सा कहता—"देख, भाभी! तू अम्मा से बुराई मत करे, कितने फल वाले केले लेकर मैं अभी आया हूँ, अभी तेरे घर को ऐसे सजाता हूँ, जिससे तेरा सब फूहर पना छिप जाय।"

बहू वही से घूँघट मे से कहती—"हाँ, लल्लू मैं तो फूहरिया हूँ ही तुम्हें देखना है, कैसी सुतेमन बहू लाते हो, किसी पतुरिया को ले आना जो घर का भी शृंगार करे और तुम्हे भी सजाती रहे।"

बुढिया झूठा कोप दिखाती हुई कहती—"अब तुम आपस मे लडाई करोगे, या कुछ काम भी करोगे? मुझे यशोदा रानी के अभी चावल लेकर जाना है। सबके घर सज गये वाद-विवाद छोडो तुरन्त सजाओ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार ब्रज मे घर-घर उत्साह छा गया। सम्पूर्ण व्रजमडल के समस्त ग्रामो मे इसी प्रकार नन्दलाल के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे सजावट हुई। यह तो गोपो के घरो की सजावट की बात है, अब जिस प्रकार गोपो ने

अपनी गौओ को सजाया, इस प्रसग को भी आप सब समाहित चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

लीपे पोते द्वार वार घर अटा अटारी।
आंगन, पैरी, बगर रसोई और तिवारी॥
नीली पीली हरी गुलाबी पचरँग सारी।
टाँगी द्वारनि लाई कहुँ जो नहीं निकारी॥
दीप चौमुखा वारिकें, कलिशानिक ऊपर धरे।
मङ्गलदायक द्रव्य सब, घर घर एकत्रित करे॥

नये ग्वारियों के जन्म पर गौओं का शृंगार

[८४४]

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० ७ श्लोक)

छप्पय

गैयाँ सब बगदाइ खिरकमहँ फिरितैं लाईं।
तेल फुलेल लगाइ न्हवाईं फेरि सजाईं॥
मोरपङ्खके मुकुट लसैं घुँघुरू पग जिनिके।
गेरू तेल मिलाइ रँगे तन सींग सबनिके॥
गंडा गरमहँ चमकनों, कनकहार पहिराइकें।
हरषित ह्वै पूजन करें, शाल दुशाल उढ़ाइकें॥

जिसको जिसके द्वारा आजीविका चलती है, उसका वही इष्ट है, उसी को वह पूजा करता है। ब्राह्मण वेदों की पुराणों की पूजा करते हैं। क्षत्रिय शस्त्रों की रथ और घोड़ों की पूजा करते हैं। बनिया अपने तराजू की डन्डी की पूजा करते हैं, किसान अपने हल बैलों की पूजा करते हैं, मल्लाह अपनी नौका को पूजते

* श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में गौओं को, साड़ों को, हल्दी और तेल से रँगा गया और गेरू आदि धातुओं से, मोर पङ्ख, माल, वस्त्र और सुवर्ण की जंजीर से सजाया गया।"

इसी प्रकार गोपों की आजिविका गौओं से चलती है, अतः वे सब पर्वों पर सब उत्सवों पर गौओं की पूजा करते हैं, उन्हें ही सजाते हैं। मनुष्य को अपनी प्यारी वस्तु को सजी सजायी देखकर स्वाभाविक ही सुख हुआ करता है। माता-पिता अपने बच्चो को कैसा सजाते हैं। पुरुष स्वयं चाहे मैले कपड़े पहिने रहें, किन्तु अपनी स्त्रियो को वस्त्राभूषणो से सजाये रखने की चेष्टा करते ही हैं। हुक्का पीने वाले अपने हुक्के को ही सजाते हैं। संन्यासियों के पास कुछ नहीं होता एक कमण्डलु होता है; उसी को घोट-घोटकर चिकनाई से चुपड-चुपड़कर सुन्दर चमकीला बनाते हैं, बहुत से उसमें चौंप भी जडवाते हैं। यह सजावट उत्सव और पर्वों के अवसर पर विशेष होती है। धराऊँ नये-नये वस्त्र निकाले जाते है। उत्सवों में यही तो होता है. स्वयं तथा अपने आश्रितों प्रियजनो तथा घरो को सजाना, अच्छे-अच्छे वस्त्रा भूषणो से अलंकृत करना, और सुन्दर स्वादिष्ट पकवान बनाकर प्रसाद पाना, इसी का नाम उत्सव है। जिस उत्सव में सबको प्रसन्नता न हुई वह उत्सव नही।

सूतजी कहते हैं— 'मुनियो! नन्द के लाल का जन्म आधी-रात में हुआ। गौओ को ले जाने वाले गोप सो रहे थे। प्रातःकाल उठते ही वे गौओं को लेकर चराने को चल दिये। खिरक में जब गौओं को न देखा, तो बूढ़े-बूढ़े गोप कहने लगे—"अरे भैया! आज नन्दलाल के उत्सव मे गौओ को सजाना था, उनका शृंगार करना था; आज गौओ को वन में भेजने की आवश्यक्ता नहीं थी। गौएँ खुलने ही क्यों दीं?"

जो युवक गोप थे वे बोले—"बाबा! हमें तो पता नही था; किन्तु कोई बात नहीं, अभी ही तो गौएँ गयी हैं। आप कहो तो लौटा लावें?

बूढ़े गोपों ने कहा—'हाँ, भैया। लौटानी ही चाहिए। गौएँ

ही तो हमारी परम देवता हैं। इनमे ही तो हमारी आजीविका है। इनकी प्रसन्नता में ही तो हमारा कल्याण है।"

यह सुनकर जो छरहरे युवक दौडने में प्रबल थे, वे दौडे-दौडे गये और दूर से ही पुकारने लगे—"अरे भैयाओ! गैयाओ को लौटा लाओ। यशोदा मैया ने एक नये ग्वारिया को पैदा किया है; उसी के उत्सव में सबको सजाना है।"

यह सुनते ही गोपों के हर्ष का ठिकाना नही रहा। पौहार के आगे जाकर उन्होने मार्ग रोक लिया, गौएँ अपने आपही खडी हो गयी; और बाँ-बाँ शब्द करती हुई गोष्ठ की ओर दौडने लगी। गोप सब घर-द्वार सजाने मे लगे थे। जब घरो को सजावट कर चुके, सडकें सजा-बजाकर सुन्दर बनादी, तब गौओ को सजाने की बारी आयी।

सबो ने मनो गेरू घोला। सबसे पहिले गौओ को यमुनाजी में स्नान कराया। स्नान कराके उन्हे अच्छी प्रकार से पोछा। उनके सीगो मे तेल और गेरू मिलाकर लगाया। वे सींगे लाल-लाल चमकने लगी। फिर दोवला लेकर उन्हे गेरू सेलखडी आदि धातुओ मे बोर-बोरकर उसके साँचे से बनाकर सबके शरीर मे लगाय। बहुतो न लहरियादार बेल-बूटे उन पर काढे। फिर सोने के काम की हुई सुन्दर-सुन्दर रङ्ग बिरङ्गी झूलें उन पर डाली। सबके सीगों मे कलँगीदार पगडी बाँधी। मोर के पङ्खों के बने हुए मुकुट उनके माथो पर बांधे। मोरपङ्ख की सीकों के बने गण्डे उन्हे पहिराये। घुँघचियो की मालायें उन्हे पहिनायी सुवर्ण के सुन्दर हारो से उन्हे सावधानी के साथ सजाया गया। उनके घुटने में बजने वाले घुँघुरू बाँधे; पीले या लाल रङ्ग का वस्त्र जिसका अंतिम भाग किसी दूसरे रङ्ग से रँगा था; वह घुटनो में बाँधा गया। बछड़े इधर से उधर कुदकने लगे, साँड रम्हाने लगे। लडके

कहने लगे—"दादा ! अम्मा ! हम बछड़ों को भी सजावेंगे।"

गोप गोपी कहते—"सजाओ भाई, आज बच्चों को ही तो सजाना चाहिये गोप के बच्चा हुआ है, गौओ के बच्चो को सजाना चाहिये।"

बालक कहते—"बछड़े हमे देखकर बिदुकते हैं। तुम पकड़ लो।"

यह सुनकर गोप बछड़ो को पकडते। लडके उन पर भी सफेदे से गेरु के चिन्ह करते, थापे लगाते तथा बिन्दी-बिन्दी रखकर त्रिकोण चतुष्कोण बनाते, उन्हे भी वस्त्र उडाते। फूलो की माला पहिनाते। बछडे कण्ठ को हिलाकर फूलो को खा जाते, तब लडके कहते—"दादा ! हम तो बछडो को सोने की माला पहिनावेंगे।"

गोप कहते—"अरे भैया बछडे तो बडे ऐबी होते है। सुवर्ण और मोतियो की मालाओ को उतारकर फेंक देगे।"

बच्चे कहते—"नही दादा ! हम उन्हे गंडो के साथ बाँध देंगे।"

इस प्रकार गोपबाल भी गौओ के बछडो को गौओ की ही भाँति सजाते। साडो को भी सबने उसी प्रकार सजाया। उनके गले मे बडा भारी घंटा बाँध दिया। गौएँ कान उठा-उठाकर चकित-चकित दृष्टि से देख रही थी। मानो वे अपने नये ग्वारिया के विषय मे जानने को सुनने को समुत्सुक हो रही हों बछडे रस्सी को तोड़े ही डालते थे—मानो वे अपने रक्षक बालक को देखने के लिये लालायित हो रहे हो।

गोपो ने कहा—'सडकें सज गयी, घर द्वार सज गये, गौओ का भी साज शृंगार हो गया। अब इन गौओ को साथ-साथ लेकर नन्दबाबा के द्वार पर चलें।"

युवको ने कहा—'लाखों गौएँ हैं वहाँ इतनी गौएँ खडी कहाँ होगी। फिर सभी साथ तो गौएँ लेकर जायेंगे।"

बूढे गोप बोले—"अरे, भाई बाहर वाले गोप जो बधाई देने को आवेंगे वे गौओं को लेकर थोड़े ही आवेंगे हम गाँव वाले ही गौओ को लेकर चलें। गौओ को आगे करके चलना शुभ होता है, फिर वहाँ रोकने का काम क्या ? बडी सड़क से चलेंगे, नन्द महल की परिक्रमा करते हुए गोप गौओ को गोष्ठ मे लौटा लावेंगे हम सब वहाँ मिलकर दधिकाँदो करेंगे उत्सव मनावेंगे।

गोपो ने कहा—"अच्छी बात है, गौएँ भी चलें। यह कहकर सबने गौओ को खोल दिया। गौएँ बड़े उत्साह और उमङ्ग के साथ नन्द महल की ओर चलने लगी। अन्य दिन तो वे नचाने से भी नही नाचती, आज वे अपने आप ठुमुक-ठुमुक कर नाचती हुई जा रही थी। लाखो गौओ के घण्टाओ और पैर मे बांधे नूपुरो की ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था मानो पथ मे से सङ्गीत निकल रहा हो सड़कें हर्षित होकर बाजे बजा रही हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। इस प्रकार सज बजकर गोप बधाई देने के लिये नन्द महल की ओर गौओ के साथ चले।"

छप्पय

बछरा गोप कुमार सजावें सब हरषावें।
बहुविधि करें किलोल तुरावें मूछ हिलावें॥
अति चचलता करें फुदुकि इततैं उत आवें॥
मानो बालगुपाल जनम को हरष मनावें।
बहु उमंगमहँ उछरिकें, सबई भागें नंद-घर।
मनहु मुनमुनै सखा की, लगी चटपटी दरश उर॥

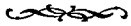

बधाई के लिये गोपों का आगमन

[८४५]

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

सजिबजिकें सब गोप ढोल करताल बजावत ।
नन्दमहल की ओर जाहिं सब रसिया गावत ॥
पहिन अँगरखी पाग दुपट्टा उरमहँ डारें ।
लम्बे तिलक लगाइ मूँछ अरु बाल सम्हारें ॥
चले विविध विधि भेंट लै, प्रेम रसिकता महँ पगे ।
मनहु कमल बिकसित सुनत, भ्रमर तुरत उतई भगे ॥

गृहस्थी की चिन्ताओं की कोई गणना नहीं । कहना चाहिये गृहस्थी चिन्ताओं का पुञ्ज ही है । जिसने कभी गृहस्थ मे पदार्पण नही किया है, वह अनुमान भी नही लगा सकता, कि व्यक्ति को नित्य ही असख्यो चिन्ताएँ कहाँ से आ जाती हैं । परन्तु कोई भी गृहस्थी ऐसा नही, जो इन चिन्ताओं से दबा न हो । इतनी

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! व्रजमण्डल के समस्त गोपगण अँगरखे पगड़ियाँ तथा अन्यान्य वस्त्राभरणों से विभूषित होकर, हाथ मे भेंट की सामग्रियों को लिये हुए नन्दजी के द्वार पर आने लगे ।

चिन्ताओ से दबे रहने पर भी कोई गृहस्थी को छोड़ नहीं सकता। क्योंकि उसे समाज की सहानुभूति प्राप्त है, दूसरो को विवाह, पुत्रोत्सव तथा दूसरे उत्सव पर्वो पर सुखी देखता है। स्वयं भी उनके सुखो मे सम्मिलित होता है और आशा करता है, कभी मुझे भी ऐसा सुख मिलेगा। मेरे सुख मे भी समाज के सदस्य सहानुभूति प्रकट करेंगे। समाज की सहानुभूति से सुख दुःख बँट जाता है। दुःख मे सहानुभूति प्राप्त होने से दुख घट जाता है सुख मे सहानुभूति प्राप्त होने से वह बढ जाता है। हृदय की प्रसन्नता को प्रकट करने अपनी श्रद्धा-भक्ति सहानुभूति व्यक्त करने हम कुछ वस्तुओ को ले जाते है। वास्तव मे वस्तुओ मे तो सुख है नही, हम उनके द्वारा अपने भावो को व्यक्त करते हैं। अपने गुरुजनो के निकट हम एक फूल की माला लेकर जाते है, उन्हे उस माला की कोई आवश्यकता नही। पहिनकर तुरन्त उतार देते हैं, किन्तु इसके द्वारा हम अपनी श्रद्धा को व्यक्त करते है। मनुष्य किसी न किसी रूप मे अपने भावों को व्यक्त करने के लिए विवश है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब घर द्वार तथा गौओ की सजावट हो गयी तो सभी गोप बधाई देने के लिये सज-बजकर चले। उनमे जो बूढे-बूढे गोप थे, वे तो सिर पर सफेद पगडी बाँधे हुए थे, कानो मे मुरकी और कंठ मे गोप पहिने थे। उनका अँगरखा घुटनो तक लटकता था। पाइजामा कुछ ढीला और हाथ मे लठिया लिये हुए थे। युवक गोपों की पगड़ियाँ रग-बिरगी थी, कोई सुरगी थी कोई पीली, कोई हरी, कोई बैंजनी और कोई लहरियादार पंचरगी थी। किसी ने खिड़कीदार बाँध रखी थी, तो किसी ने लटकन, किसी ने सुई और किसी ने नोकदार सुक्केदार बाँध रखी थी। किसी ने पगड़ी के ऊपर दुपट्टा बाँध

रखा था, किसी ने चमकता सुनहरी चीरा लगा रखा था। किसी का चोर चाँदी के रग का था, माथे पर चंदन के खौर मुख पर भी चंदन लपेट रखा था। कानो में मुरकी पहिने हुए थे, किसी-किसी के कानों में सोने की लौंग भी शोभा दे रही थी। कण्ठ में सोने की चिपकन, गोप, तोरा कण्ठा, लडी तथा जंजीरें पडा थी। अंगरखी शरीर मे पडी हुई थी। किसी-किसी की धोती धुली और स्वच्छ थी, किसी की तेल मे चिकनी थी, उस पर लाल लँगोटा बँधा हुआ था; उंगलियो मे अंगूठी और हाथों में अंमेठवाँ कड़े पड़े थे, कमर के ऊपर कौधनी और किसी-किसी के बाजूबन्द भी बाहों में शोभा दे रहे थे। किसी के हाथ में ढप था, किसी के हाथ में ढोलक थी। कोई खँजरी बजा रहा था। किसी के हाथो में करतालें थी, कोई वीणा बजा रहा था। कोई मृदङ्ग को गले में लटकाये उसी पर हाथ मार रहा था। इस प्रकार गात-बजाते नन्दजी के महल की ओर चले।

छोटे-छोटे बच्चे गोटादार चमकनी टोपी पहिने थे। सुन्दर रग बिरंगी बगलबन्दी जिनके किनारों पर गोटे लगे थे सूर्य के प्रकाश मे चमकने लगती। सभी गोपकुमार कानों में बारी हाथो में कड़ूला, कण्ठ में कठुला, गले में हँसुली और कमर में कौधनी पहिने थे। सबकी आँखों में मोटा-मोटा काजर लगा हुआ था। सभी अपने भाई, पिता तथा चाचाओं के साथ हँसते खेलते जा रहे थे। गोप पीछे-पीछे गौओं को भी सजाये हुए ला रहे थे। उस समय का दृश्य देखने ही योग्य था। इस प्रकार गोकुल के सभी गोप नन्दबाबा के द्वार पर पहुँचे। नन्द, उपनन्द तथा सनन्द आदि सभी भाइयों ने उठकर गोपो का स्वागत सत्कार किया। सब गाने बजाने और हँसी विनोद करने लगे। नन्दजी को भाँति-भाँति की बधाइयाँ देने लगे। नन्दजी प्रेम में विह्वल

हुए लज्जित से इधर-उधर देखने लगते। बात को टाल जाते।

ब्रज चौरासी कोश में बात फैल गयी। सभी गाँवों के गोप दल के दल बना-बनाकर आने लगे। सब ढप ढोल बजाते रसिया गाते परस्पर में बातें करते आते। एक दूसरे गाँव वालों से मिलते और कहते—"राम राम जी, राम राम जी।"

वे कहते—"राम रामजी चौधरी जी, राम रामजी बौहरे! कहो बाल-बच्चे सब राजी खुशी हैं। तुम्हारे यहाँ अबकी कैसी वर्षा हुई।"

वे कहते—"सब आपकी कृपा है, आप कहिये, आपके तो बाल-बच्चे अच्छे हैं न? हमारे यहाँ तो अबकी बहुत वर्षा हुई। घास का कुछ भी अकाल नहीं, गैयाँ भर पेट चर आती हैं। आपके यहाँ तो घास पर्याप्त है न?"

वे उत्तर देते—'परसान तो जी, हमारे यहाँ घास की कुछ तंगी रही, परन्तु अबके तो रेज है। चाहे जितनी गौएँ खायँ।"

बड़े बूढ़ों की बात सुनकर कोई होले से किसी के कान में पूछता—'अरे ये किस गाँव के हैं?"

वह कहता—'अरे, तुम नहीं जानते, तुम्हारी भाभी के गाँव के हैं, हथोरा के हैं। और आगे यह 'रीठा' गाँव वालों का झुण्ड है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सभी गोप प्रेम में पगे हुए-से, आनन्द में सने-से जा रहे थे। टोल के टोल जय जयकार करते हुए जा रहे थे। बहुत गाँवों के थे उनमें से मुख्य-मुख्य गाँवों के नाम मैं बताता हूँ।

वे ये हैं—"हथोरा, रीठा, कारव, रावल, लोहवन, गोपालपुर बिजौली, जसौनी, मांट, आँट, आँटरम, सुनरख, बसई, छटीकरा,

नरी सेमरी, पारसौली, कोटवन बठैन कलहरा, नन्दीश्वर, बनई, कमई बरसानो, ऊँचोगाँव चिकसौली सुमहरा महारानो कामबन, सीपरसो, खाइरो दाउजी, दीघ होरी, रायो, सुरीर, मदनवारो तथा और भी बहुत से गाँवो के गोप थे। वे सब उमङ्ग के मारे दौडे जा रहे थे। किसी का नाम वीरभानु किसी का नाम चन्द्रभानु कोई सूर्यभानु कोई देवभानु इन्ही नामो से विख्यात थे। कोई महानन्द कोई शिवानन्द, काई ब्रह्मानन्द कोई सुप्रभानन्द, कमलानन्द और कोई नित्यानन्द इन नामो वाले थे।"

गोपो मे मुख्यतया तीन दल थे। एक तो नन्द जी के गोत्री, जिनसे नन्दजी का भाई चारा था। वे आकर नन्दजी से भाई, ताऊ चाचा आदि कहते थे। एक महारानी के सम्बन्ध से ससुराल वाले थे आकर नन्दजी से फूफा, जीजा, बाबा आदि कहते थे, एक वृषभानु जी के गोत्री थे उनमे और ही सम्बन्ध था। इस प्रकार मिल कर चलते, कोई आगे बढ जाते कोई किसी गोल का साथ छोडकर किसी दूसरे गोल मे जा मिलते सभी नन्द के यहाँ पहुँचकर तुमुल ध्वनि से वाद्यो को बजाने लगते। किन्ही के समीप नन्दजी जाते किन्ही को उपनन्दजी बिठाते किन्ही का स्वागत सनन्द जी करते किन्ही को हुक्का तमाखू के लिये नन्द जी पूछते। पान, बीरो, सुपारी, तमाखू लौंग, इलायची तथा अन्यान्य मुख शुद्धि के पदार्थों के ढेर लगे थे। देखने मे तो स्वागत गोकुल के गोप कर रहे थे, किन्तु वास्तव मे अदृश्य रूप से सब सिद्धियाँ ही सेवा कर रही थी। सभी यह अनुभव कर रहे थे, कि नन्दजी ने हमारा सबसे बढ कर स्वागत सत्कार किया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार झुन्ड के झुन्ड व्रज भर के गोप आकर नन्दजी को बधाइयाँ देन लगे, अब जिस

प्रकार गोपियों ने आकर नन्दलाल को उपहार भेंट किये, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

मिलहिँ परस्पर गहिके हृदयतैं हृदय सटावैं।
कोई छूवै पैर गहकिकें ताहि उठावैं॥
कोई केशर मलै सुपारी बीरी देवैं।
कोई लैंन न पाहिँ झपटि तिनि करतैं लेवैं॥
सिद्धिनि सब सत्कार करि, जनम सुफल अपनो करयो।
गोकुल धन, मणि, अन्न अरु, सबई वस्तुनितैं भरयो॥

गोपियों की तैयारियाँ

[८४६]

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

इत गोपिनि सम्वाद सुन्यो सुत जसुमति जायो ।
रोम रोममहँ हरष सुनत सबई के छायो ॥
नंदभवन कूँ गमन करन की करी तयारी ।
लँहगा नयो निकारि पँचरँगी ओढ़ी सारी ॥
सुमन लगाइ सजाइ कच, वेणी बाँधी विधि विहित ।
सिर सिंदूर लगाइ पुनि, अधर रँगे शोभा सहित ॥

जो त्रिगुणातीत हैं, वे तो मनुष्य नहीं, उनकी बात तो छोड़ दीजिये, नहीं तो मनुष्य की इच्छा अपने को सजाने की होती है। देखने वाले हमे सुन्दर समझें यह लालसा सभी के मन मे रहती है। इसी दृष्टि से शृंगार किया जाता है। शृंगार के विविध प्रकार हैं, देश काल और पात्र के अनुसार शृंगार में

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब गोपिकाओं ने यह बात सुनी कि यशोदारानी के पुत्र हुआ है, तो उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। वे वहाँ जाने के लिये अपने को वस्त्र, आभूषण और अञ्जनादि से सजाने लगीं।"

भी भेद होता है। राजा का शृंगार और ही प्रकार का होता
व्यापारी के शृंगार भिन्न ही होते हैं। बूढ़े इस विचित्र ढङ्ग
शृंगार करते हैं, कि उनके वृद्धपने की मानमर्यादा बनी
युवकों का शृङ्गार और ही होता है। कोई केशों में कु
लगाकर उन्हें सजाते हैं, कोई धूलि मलकर उसी में सौन्दर्य
अनुभव करते हैं। नागा महात्मा अपने सम्पूर्ण शरीर में
लगाकर उन्हें विधिवत् सम्हालते हैं। सौन्दर्य की भावना
भी है। कोई इस प्रकार शृंगार करते हैं हमारी सादगी प्र
हो। कोई तो शुभ्र-वस्त्र पहिनकर अपने मन को सन्तुष्ट करते
कोई मैले कुचैले फटे पुराने वस्त्रों को पहिनकर अपनी स्वा
विकता सादगी और सरलता समाज को दिखाते हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शृंगार करने की भावना प्र
होती है। जब से इस देश की श्री नष्ट हो गई है, तब से अधम
प्राचुर्य से स्त्रियों की मति भी मारी गयी है, वे शृंगार को एक क
का कार्य समझती हैं। द्वेषवश वे कहती हैं—"हम कोई खि
तो हैं नहीं जो पुरुष को प्रसन्न करने के लिए दिन भर अङ्गों
रँगती रहें, हम भी स्वतन्त्र हैं।" किन्तु स्वतन्त्र होने पर
वे शृङ्गार किये बिना मानती नहीं। बालों को आकर्षक बनाने
वस्त्रों की सजावट में उनका बहुत समय जाता है, फिर चाहे
सजावट हमारी संस्कृति के विपरीत ही क्यों न हो। जो स
स्वभाव है, वह तो किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होगा ह
स्त्रियाँ कितनी भी उन्नति या अवनतिकी ओर अग्रसर हो जा
स्त्री सुलभ लज्जा और शृङ्गार प्रियता को वे खो नहीं सकत
क्योंकि सहज स्वभाव दुरतिक्रम होता है। प्राचीन काल में स्त्रि
शृङ्गार न करना यह अशुभ चिह्न मानती थीं। बहुत से सौभा
चिह्न तो ऐसे थे, जिनका धारण करना अनिवार्य था। शृङ्गार

स्त्रियो की शोभा और बढ जाती है। उनके आभूषण ऐसी सम्पत्ति हैं जो विपत्ति मे काम आते हैं। पुरुष जब सब ओर से निराश हो जाता है, कही भी उसे आश्रय नही दीखता, तब उसकी दृष्टि अपनी पत्नी के आभूषणो की ओर जाती है और वे आडे समय पर काम आते हैं अत घर में स्त्रियों पर आभूषणो का रहना आवश्यक हो नही अनिवार्य है। सौभाग्य की वृद्धि के लिये शृ गार करके आवें तभी उत्सवो की शोभा है रस की वृद्धि होती है तभी सरसता आती है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! जब अन्त पुर मे गोपियो न श्रीकृष्ण जन्म का समाचार सुना, तब तो उनके हृप का ठिकाना नही रहा। प्रथम झाड बुहार कर लीप-पोतकर चौक आदि पूरकर ध्वजा, पताका बन्दनवार लगा कर तथा मङ्गल द्रब्यो को यथा स्थान रखकर अपने-अपने घरो को सजाया। घर सजाने के अनन्तर फिर उन्होने अपने-अपने अङ्गो को सजाया शरीर का शृ गार किया। उत्सव मे जा रही हैं, मङ्गल का अवसर है, मङ्गलमयी बनकर वहाँ जाना चाहिये। फूहर की भाँति मैले कुचैले वस्त्रा से चली गयी तो बच्चे का अमङ्गल होगा सब घृणा करेंगी। सब प्रकार की सजावट ही तो समारोहो की शोभा है।

प्रथम उन्होने अपने शरीरो को झाड पोछकर उसमे सुन्दर सुगन्धित तैल लगाया। पुन किसी ने पिसी सरसो मे बेसन मिलाकर उसका उबटन किया। किसी ने हल्दी तैल आटा मिला कर उसी से उबटन किया किसी ने बादाम पिस्ता तथा केशर पीसकर उसी का उबटन किया। उबटन से तैल को चिकनाहट छूटकर शरीर दमकने लगता है। तदनन्तर सुन्दर सुगन्धित गुलाब जल पड़े जल के द्वारा सिर से स्नान किया। भाँति भाँति

की सुगन्धित वस्तुओ से सिर के बालो को धोया। फिर उन गीले बालो को अगुरु, चन्दन के चूर्ण का दहकते कोयलों पर डालकर उसके धूएँ से सुखाया, जिससे उनमे सुगन्धि व्याप्त जाय। फिर उन्हे बहुमूल्य सुगधित तैल आदि डालकर कंघी से सीधा किया। बूढी-बूढी स्त्रियो ने कहा—"आ बेटी! तेरी वेणी गूथ दूँ।"

सबको तो श्रीकृष्ण दर्शन की चटपटी लगी हुई थी। मुनियो! आप इस कथा को प्राकृत कथा समझ कर मुझे बीच मे टोककर रस भग न करे। इसमे प्राकृत रस की गन्ध भी नही। ये गोपियाँ सभी महाभागवती हैं इनकी चरणो की धूलि के लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते है। यह जो सब शृंगार कर रही है, श्री कृष्ण के निमित्त ही कर रही हैं। श्रीकृष्ण के निमित्त किये हुए सभी कार्य अप्राकृत चिन्मय हो जाते है यह शृंगार कर रही है परम दिव्य अलौकिक और दिव्य रस का उत्पादक है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! महाभाग! हम विमुक्त मुनि शुष्क हृदय के नही हैं। यह तो कह नही सकते हमारा उस दिव्य अप्राकृत चिन्मय रस मे प्रवेश है; किन्तु इतना जानते हैं, श्रीकृष्ण और गोपियो का जो शृंगाररस है वह दिव्यातिदिव्य अलौकिक तथा कुत्सित काम भाव से सर्वथा रहित है इनकी कथा सुनने से अन्त.करण शुद्ध होता है, प्राकृत काम नष्ट होता है। आप नि:संकोच गोपियो के शृंगार का वर्णन करें।"

श्री सूतजी बोले – "हाँ, महाराज! यही मुझे निवेदन करना था। अच्छा तो बडी बूढियों द्वारा उन्होने अपनी-अपनी वेणियो को बंधवाया। किसी ने एक वेणी कराई बड़े विचित्र ढग से उनमे मालती, माधवी तथा यूथिका के छोटे-छोटे पुष्पो की मालायें गूँथ कर एक प्रकार का जाल-सा बनाकर एडी तक उसे लटका दिया, उसमे रेशमी फुन्देदार लच्छे लटका दिये। किसी ने बीच से

वालों को दो करके उन्हें गुहकर उनका जूडा बनाया बीच-बीच मे कुसुम कलियो को लगवाया। किसी ने जूडे को सिर की ओर बाधा किसी ने दाईं ओर किसी ने बाईं ओर किसी ने ठीक सिर और पीठ की दोनो हड्डियो के बीच मे अपने जूडे को बाँधा और उसमे रगबिरगी मालाय लपेटीं माँग मे सिंदूर की रेखा लगायी। भाल पर केशर, कस्तूरी गोरोचन चन्दन चमकनी बेंदी अथवा सुवर्ण की बिन्दी लगायी। कपोलो पर चदन की खौर लगाकर तथा लोध्र से उन्हे लाल बनाकर उन पर पत्रावली की रचना की। भौंहो को सम्हाल कर उन्हे कुटिल बनाया। आँखो मे सुन्दर सुरमा कज्जल अजन लगाया। दाँतो मे मिस्सी, किसी-किसी ने उनमे चौंप भी लगायी। मुख मे सुन्दर लौंग, इलायची, केशर कपूर, जायफल, सुपारी तथा अन्यान्य सुगन्धित पदार्थों से युक्त सुन्दर पान दबाया। ओठो के आलक्तक स विधिपूर्वक सम्हाल कर रँगा। चिबुक पर चमकीली बिन्दी लगायी। अगो मे केशर, कस्तूरी कपूर तथा लोध्र आदि मिलाकर लगाया, जिसमे सब अग सुगन्धित हो जायँ और अग के वर्ण मे पीतरक्त वर्ण मिलकर एक विशेष आभा को उत्पन्न करे। वक्षस्थल पर गन्धयुक्त कुकुम का लेप किया। हाथो मे मिहदी तथा नखो को आलक्तक से रँगा। चरणो मे महावर लगाया, नखो के पादतल को आलक्तक मे रँगा। पुन: दर्पण मे मुख देखकर जहाँ-जहाँ कोई त्रुटि दिखाई दी, उसे पुन सम्हाला। तदनन्तर धराऊँ सुन्दर सुगन्धित रखे हुए वस्त्रों की पेटिका निकाली। उसमे स जो सबस सुन्दर घूमघुमार साठ पाट का लँहगा था वह पहिना। किसी का लँहगा ८० गज का था। किसी का सौ गज का था। उनके किनारा मे मोतिया की लामन लगी थी, सिलमा सितारेकार मोती का काम उन पर हो रहा था, गोखुरो की झडी, जरी के बेलबूटे उसमे कढे थे, स्थान-

स्थान पर छोटे-छोटे शीशे चढे थे, दूर से ऐसा प्रतीत होता था मानो नीले लाल रंग वाले नभ मे तारे उदित हो रहे हो। उनमे झब्बेदार रेशमी लम्बा नारा लगा था। जिन्हे पहिन कर उनकी शोभा अत्यन्त बढ रही थी। कन्चुकी हरी, लाल अथवा गाढे पीले रङ्गो की थी। सब ओढनी-फरिया रङ्ग बिरङ्गी थी जिनमे भांति-भांति के काम हो रहे थे, गोटा लगाने से वे चमक रही थी। इस प्रकार चार वस्त्र पहिनकर उन्होने आभूषणो को धारण किया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आभूषणो की गडना करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है, फिर भी मुख्य-मुख्य आभूषणो के नाम मैं बताता हूँ। गोपियो ने श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मे जाने के लिये अपने जूडे मे जूडा नामक फूलदार आभूषण लगाया, सिर पर चूडामणि और माथे के ऊपर लडोदार खौर बांधी। कानो मे कुण्डल कर्णफूल, बाला छोटी बाली तथा झुमका पहिना। दातो मे चौर और नासिका मे किसी ने नथ, किसी ने सोने का सैठ, किसी ने लटकन बुलाक, झलका तथा जडाऊ नग पहिना। चिबुक पर नील नग चिपकाया। कठ मे कठा कठहार, मणि-मुक्ताओ के हार, चन्द्रहार नौलखाहार, द्विमनिया, तिमनिया, पचमनिया, गुलूबन्द, इकलरी, दुलरी, तिलरी, चौलरी, पचलरी, सतलरी जौमाल, चम्पाकली, पुनरीमाल, मोहनमाल, तथा और भी अनेक प्रकार के हार यथा रुचि पहिन। भुजाओ मे बराजोसन, बाजूबन्द, कलाई मे कगनी, चुरी, छन्ना पछेली, दुआ, बगली, तारकसी, मठिया, और परोबन्द। उँगलियो मे आरसी छल्ला छाप तथा मुदरी। कटि मे कर्धनी, तथा बाजनी। पैरो मे पायजेब, पायल, रमझोल लच्छे कडे छडे साकर, साँकर, तथा तोडा। पजे मे पगमान, नहिया, एडीचौप, चुटकी, दुछल्ली,

बिछिया तथा छमछम आदि। इस प्रकार भाँति-भाँति के सुवर्ण चाँदी तथा रत्न जटित बहुमूल्य आभूषण पहिन कर वे नन्द भवन की ओर जाने के लिये समुत्सुक हुईं। घूम घुमारे लँहगों को पहिनकर छम्म-छम्म करती हुई वे गजगामिनी इधर से उधर घूमने लगीं। कभी इसे बुलातीं कभी उसे पुकारतीं, इस प्रकार आभूषणों की झङ्कार से निर्जीव गृहों को मुखरित-सी करतीं अत्यधिक उत्सुकता प्रकट करने लगीं। उनके उत्तुंग कुच तंगदार मणि जटित कंचुकी से आबद्ध होने पर भी शरीर से पृथक् स्पष्ट दिखाई देते थे। वे श्रीकृष्ण दर्शन लालसा में घर द्वार, कुटुम्ब परिवार को भूल रही थीं। युवती चंचलता प्रकट कर रहीं थी। वृद्धा गंभीरता के साथ साज सम्हार कर रही थीं। बुढ़ियाँ कह रही थी "शरीर तो सजा लिया क्या वहाँ खाली हाथ जाकर लठ्ठ-सी खड़ी हो जाओगी। उपहार का थाल तो सजाओ!"

लजाती तथा मंद-मंद मुस्कराती हुई युवतियाँ कहतीं—"अम्मा जी! क्या क्या चाहिये हमें तो पता नहीं आप जो कहें वही थाल में सजावें।"

सूरजी कहते हैं—"मुनियो। इस प्रकार ब्रज की गोपियाँ स्वयं वस्त्राभूषणों से मंडित होकर अब नंद-गृह ले जाने के लिये थाल सजाने लगी।"

छप्पय

मुखमहँ मिस्सी पान नाक नकबेसरि सोहे।
कुच कुंकुम की कीच कठिनता रति मनमोहे॥
बेंदी, कुंडल, हार, झूमका, कण्ठा, लटकन।
चम्पकली, जीमाल बरा, बाजूबँद कंगन॥
मुदरी, छल्ला, आरसी, पगपानहु पायल कड़े।
पहिने पैरनि साँट अरु, पाइजेब, छमछम छड़े॥

नन्द-भवन की ओर सोपहार गोपियों का गमन

[८४७]

नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
वलिभिस्त्वरित जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥❀

(श्री भग० १०स्क० ५ अ० १०, श्लोक)

छप्पय

करि सोलह शृङ्गार बनीं रति-सम सब नारी।
चाँदी को लै थार चाव की वस्तु सम्हारीं॥
किसमिस, गोलागिरी, छुआरे और मखाने।
पिस्ता अरु बादाम, चिरौंजी, एलादाने॥
हँसली कटुला कौंधनी, कुरता टोपी खिलौना।
न्योछावर, राई नमक, लयो ललाकूँ मुंकुँना॥

शास्त्र का ऐसा वचन है, कि जब राजा के समीप जाना हो, किसी वेदपाठी-ब्राह्मण के पास जाना हो, अपने गुरुओं के समीप जाना हो, मुहूर्त दिखाने के लिये ज्योतिषी के समीप जाना हो,

---

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन! उन गोपियों के कमल मुख की कान्ति नव-कुंकुम के किञ्जल्क के सदृश थी व बहुत सी भेंटों को लिये हुए नन्द भवन की ओर शीघ्रता के साथ जा रही थीं, शीघ्र चलने के कारण उन-पृथु श्रोणियों के पीनपयोधर चञ्चल हो रहे थे।"

औषधि आदि पूछने वैद्य के पास जाना हो अथवा अपने कुटुम्ब परिवार मे मित्रो के यहाँ उत्सव आदि में जाना हो, तो रिक्त हस्त कभी भी न जाय, कुछ न कुछ लेकर ही जाय। उत्सव मे सभी भेंट लेकर आते हैं, भेंट क्या लाते हैं अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हैं। लडकी के विवाह मे सम्बन्धी सम्मिलित होते है तो लडकी के लिये कुछ वस्तुएं लाते हैं, कुछ द्रव्य कन्या-दान मे देते हैं उसे उपहार की वस्तुएं देते है। विवाह होने पर लडकी याद रखती है, यह उनकी दी हुई अँगूठी है, अमुक वस्तु उन्होंने मुझे दी थी। लड़का होने पर परिवार वाले कुटुम्बी सगे सम्बन्धी तथा इष्ट-मित्र प्रेमी बच्चे के लिये बच्चे की माँ के लिये उपहार भेजते हैं। जिनसे अपना सम्बन्ध है, उत्सव-पर्वो मे जिनके यहाँ आते जाते हैं, वे लोग सभी परस्पर मे सम्मिलित होते हैं। स्त्रियाँ पृथक् सौ पचास मिलकर गीत गाती हुई चावल लेकर आती हैं। नगरों में तो यह प्रथा नाम-मात्र को ही अवशिष्ट रह गयी है। गाँवो मे अभी तक चावल ले जाने की प्रथा है, किन्तु पहिले जैसा उत्सव नही है। अब तो लकीर पीटना शेष रह गया है। चाव लेकर स्त्रियों को आने मे कितना उत्साह होता है, इसका अनुमान बिना प्रत्यक्ष देखे कोई लगा ही नही सकता। उस समय मूर्तिमान् सरसता सजीव चञ्चलता नृत्य करती हुई दिखाई देती है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! यशोदाजी के लाला हुआ है। इस समाचार ने ब्रजाङ्गनाओ के रोम रोम मे आनन्द और उत्साह को उत्पन्न कर दिया। हर्ष के कारण उनके पैर पृथ्वी पर नही पड़ते थे। तितलियो की भाँति वे इधर से उधर नाच रही थी। यह ला, वह ला इसे उठा, उसे रख। यह वस्तु हमारे घर मे नही है तो श्यामा जीजी के यहाँ से माँग लो। बहू कहती—

"माँजी ! अतलसका पीला कुरता तो नही है।" बुढ़िया कहती—"गोविन्द बीबी के यहाँ से ले आओ।" कोई दौडकर जयदेवी के यहाँ चली जाती और पच-मेवा ही माँग लाती।

कोई नई बहू पूछती—अम्मा जी ! टीके मे कौन-कौन सी वस्तुएँ जाती हैं।"

बुढ़िया अपना पुरखापन जताती हुई कहती—"देख बहू ! चाँदी के थाल मे मिठाई रख ले। किसमिस गरी का गोला, चिरौंजी, बादाम और छुआरे, ये पञ्चमेवा रख ले। बच्चे के लिये कुरता, टोपी, कठुला, कड़ूला, हेंसली, कौंधनी, खेलने के खिलौना, झुनझुना, न्यौछावर के लिये द्रव्य और माँ बच्चे के ऊपर उतारने के लिये राई और नौन भी रख ले। यशोदारानी के लिये तीहर तो उनकी पीअर से आवेगी। हमारे यहाँ से तो इतना ही नेग होता है। न्यौछावर उतारकर नाइनि को दे देना और दाई को भी कुछ देना होगा।"

वह तुरन्त इन वस्तुओ को चाँदी के थाल मे सजा लेती। अब एक दूसरी के यहाँ दौरकर जाती और कहतीं—'आनन्दी-जीजी ! अब किस बात की देर है।"

वह मुँह बनाकर कहती—"अरी बीबी ! देर काहे की है। हमारे गोकुल की रीति ही ऐसी है, साज सम्हार मे ही समय बिता देती हैं। अभी-अभी कामलता-चाची प्रेमलता चाची, रूपो-जीजी, ये सब निकलें, तब हम निकल सकती हैं। छोटी होना यह भी तो एक पाप ही है।"

इतने में ही बाहर से सुनाई दिया—"वह सब दोष हमारा ही है क्यो ! अपनी बात नही कहती, अभी तक तुम्हारी रामा-रानी तो आँखो में अजन ही लगा रही हैं।"

यह सुनकर बहू भीतर से हड़बड़ाकर आती और कहती—

"चाची ! पड़ैन लगती हूँ।" यह कहकर उसके पैरों को दो चार बार मसलती।"

इस पर चाची कहती—"हजारों उमर हो बेटी ! तेरा सुहाग सदा बना रहे, बूढ़-बुढ़ी लो हो, दूध-पूत से घर भरा रहे, बेटा हो नाती-पोता हो।"

इस पर वह कहती—"चाचीजी ! अब देर करने का काम नहीं ? देखो, सुन रही हो तुम, उस मुहल्ले की स्त्रियाँ तो पहुँच भी

गयी; आज बड़ी भीड़ होगी। देर हो जाय, तो सम्भव है सूतिका-गृह तक पहुँच भी न सकें।"

इस पर चाची कहती— हाँ, बहू! अब चलो।" बस फिर क्या था, चाचा के निकलते ही घरों में से स्त्रियाँ उसी प्रकार निकलने लगीं, जैसे कबूतरी अपने-अपने दरों में से निकलकर दौड़ती हैं। सबके हाथों में नाना प्रकार के उपहारों के थाल थे। आगे-आगे बड़ी-बूढ़ी सौभाग्यवती स्त्रियाँ सादे सफेद कपड़े पहिने भक्ति भाव से शनः शनैः गीत गाती हुई चल रही थीं। उनके पीछे नई छरहरी युवती गोपियाँ चल रही थीं। वे रङ्ग बिरंगे वस्त्राभूषणों के कारण अत्यंत ही सुन्दर लग रही थीं। एक-एक हाथ लम्बा घूंघट मारे सरसता में पगे हुए शृंगार-रस के गीत गाती हुई जा रही थीं। वे दो उंगलियों से घूंघट को सरका कर कभी-कभी एक आंख से इधर-उधर देख लेती थीं। नितम्बों के स्थूल होने से वे लचक-चलक कर स्थूल हथिनियों की भाँति चल रही थीं। उन्हें जाने की चटपटी लगी थी, पीछे से नितम्बों के भार के कारण और आगे से पीनपयोधरों के भार के कारण वे अधिक शीघ्रता से चलने में समर्थ नहीं थीं। फिर भी वे जब दौड़ती तो कंचुकी से कसे बिल्व के समान स्तन चंचल मछली के समान हिल-हिलकर उनकी गति में बाधा डाल रहे थे। उनके मुख-चन्द्रों की आभा से लज्जित हुए सूर्य आकाश के नील अंचल में छिप गये थे। नव-कुंकुम रूप केशर से सुशोभित उनके मनोहर मुख शारदीय अरविन्द के समान दिखाई देते थे। वे अपने सुरीले कण्ठों से ऐसे सरस गीत गा रही थीं, मानों सुधारस की संगीत द्वारा वृष्टि कर रही हों। उन युवतियों के साथ जो मुख खोले हुए युवतियाँ या लड़कियाँ थीं, वे इस गाँव की लड़कियाँ हैं, उनमें से बहुत—सी कुमारी थीं, जिनका अभी विवाह नहीं हुआ था।

बहुत सी ऐसी थी जिनका विवाह तो हो गया था, किन्तु अभी गौने नही गई थी। बहुत सी गौने से लौटकर आयी थी। वे गाँव की बहुओ के गीत मे सहयोग नही दे रही थी, किन्तु भीतर ही भीतर उनका चित्त उमड रहा था, सरसता मे पग रहा था, हृदय हिलोरें ले रहा था। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये सभी समानरूप से लालायित थी।

सूतजी बोले—'महाराज! एक बात अभी से स्मरण रख लीजिये। व्रज की स्त्रियो के, भगवान् मे दो ही भाव थे। कुछ बुढियाओ का तो भगवान् के प्रति वात्सल्य स्नेह था, नही तो सभी का उनमे कान्त ही भाव था। श्याम सुन्दर हमारे प्रेष्ठ हैं।

शौनकजी ने हँसकर कहा—'सूतजी! आपने तो आश्चर्य की सीमा का भी उलघन कर रहे है। अभी नन्दलाल एक दिन के भी हुए नही, गोपियो ने दर्शन तक भी किये नही, उनमे कान्त भाव कैसे हो गया।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज! ये नटनागर कभी बालक नही होते, ये तो नित्य किशोर ही बने रहते है। इनका नाम ही नन्दकिशोर है। किशोरी और किशोर ये न कभी बालक होते हैं न बूढे। इनकी सदा एक ही अवस्था रहती है। रही दर्शन की बात सो, ये तो न जाने कबसे नन्दलाल से सम्बधित हैं। बिना पूर्व के सम्बन्ध के उत्कण्ठा नही होती। ये गोपियाँ तो रात्रि-दिन उन्ही की प्रतीक्षा करती थी। इसलिये व्रज मे लडको के साथ तो सख्य भाव श्रीकृष्ण का है, किन्तु स्त्रियो से माता और कान्ता ये ही दो सम्बन्ध हैं। व्रजे सन्ति त्रयो गुण.' व्रज मे सख्य, वात्सल्य और मधुर ये ही प्रधानतया तीन रस हैं।"

इस पर शौनकजी ने कहा— सूतजी! भगवान् के दो ताऊ

थे दो सगे चाचा थे, इनके भी तो लडकियाँ होगी। वे तो भगवान् की बहिनें ही हुई।

सूतजी बोल—"महाराज! मै कह तो चुका हूँ, उनमे से किसी के लडकी थी ही नही। यशोदा मैया के एक योग माया से हुई थी, उसे भगवान् ने व्रज के बाहर विन्ध्याचल में पठा दिया। व्रज-मडल भर मे उनके कोई बहिन ही नहीं थी। सुभद्रा का जन्म तो द्वारका मे हुआ था। द्वारका मे तो द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को भाई कहा है। अस्तु, यह प्रसङ्ग तो गहन है। आगे यथा स्थान इस विषय की चर्चा होगी। यहाँ केवल वात्सल्य रस के प्रसङ्ग मे इतना ही सकेत करना था, कि बूढी गोपियो का ही वात्सल्य भाव था। ऐसी बहुत कम थी। शेष तो सरसता मे पगी गीत गाती जा रही थी।

इस प्रकार वे आनद मे मतवाली हुई गाती बजाती नन्दजी के भवन के सम्मुख पहुँची महाराज! यह तो मैंने गोकुल की गोराङ्गनाओ के सम्बन्ध मे बताया, अब अन्य गाँवों मे चाव से लेकर ब्रजाङ्गनाएँ आयी, उनके सम्बन्ध की भी कुछ बातें सुनिये।"

छप्पय

लीये कर उपहार भावमहँ भरिकें भामिनि।
कटि कुचभार सम्हारि नामित-सी है गजगामिनि॥
नेह पागमहँ पगीं सरसता-सी सरसावति।
मुखरित पथकूँ करति चलति रस-सो बरसावति॥
देह गेह सुधि बुधि न कछु, कृष्ण-कृपाकी कामिनी।
नव जलधरमहँ चमकिरे, चलीं मनहुँ सौदामिनी॥

भावमयी गोपियों की अपूर्व शोभा

[८४८]

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥❀

(श्री भा० १० स्क० ५ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

काननि कुंडल कनक समुज्वल मणिमय विलसित ।
चमकै दमकै हार मनहु नभ उडगन विकसित ॥
घूँघटतैं मुख ढक्यो मनहु छिपि घनमहँ निशिपति ।
झरहिं सिरनितैं सुमन मनहु शर छोंड़ै रतिपति ॥
हृदय-हार अरु कुचनिमहँ, होवै संघर्षण प्रबल ।
ज्यों झखझोरैं मीन द्वै, मानसरोवर हलमल ॥

स्त्रियो मे शास्त्रकारो ने तीन प्रधान गुण बताये हैं । वे गुण

❀ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् नन्दजी के भवन को जाती हुई गोपिकाओ की कैसी अपूर्व शोभा उस समय हुई । उनके कानो में उज्वल मणिमय कुंडल थे, हार हमेल गले मे पहिने थी, रग बिरगे वस्त्र पहिने थी, मार्ग मे उनकी चोटियो से फूलों की वर्षा-सी होती जाती थी । करो मे कंकण-पहिन थी, और शीघ्र चलन से उनके कुण्डल स्तन तथा हार हिल रहे थे ।"

और किसी मे भी नही हो सकते। प्रथम सद्गुण तो इनमे यह है, कि ये पुत्ररत्नो को प्रसव करती हैं। जितने अवतार, महात्मा अथवा महापुरुष हुए हैं, उनको इन्होने ही जना है। दूसरा गुण इनमे यह है, कि ये पति के लिये अपना नाम, कुल, गोत्र तथा शरीर सब कुछ निछावर कर देती हैं। यही नही, कि जीवित पति के मन मे अपना मन मिलाकर उसकी सहगामिनी बनी रहे, अपितु मरने पर हँसते-हँसते उसकी चि ा पर चढकर जल जाती हैं और परलोक मे पुन अपने प्राणनाथ से मिल जाती हैं। इतना बडा त्याग ससार मे और कोई कर नही सकता। तीसरा गुण इनमे सर्वश्रेष्ठ यह है, कि ये मङ्गलमयी हैं। घर में रहकर नित्य कोई न कोई मङ्गलकृत्य करती ही रहती हैं, व्रत, उपवास उत्सव, गीत वाद्य, नृत्य यह इनका स्वभाव है। सच पूछा जाय तो उत्सवो की शोभा तो स्त्रियो से ही है। स्त्रियाँ जिसके भी यहाँ जायेंगी जाते ही काम मे जुट जायेंगी। समारोह को सफल बनाने मे ये सतत प्रयत्न करेगी। घर मे जितने विवाह, पर्व तथा अन्य उत्सव होते हैं उनमे पुरुष तो सामग्री जुटा देते हैं, करती घरती तो घर की स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियो का हृदय सरस और सङ्गीतमय कला पूर्ण होता है। ललित कलाओ मे इनकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति होती है। जिस उत्सव मे स्त्रियो का सहयोग समारोह न हो वह अधूरा है, नीरस शुष्क और केवल चहल पहल मात्र है। उत्सव स्त्रियो से चौगुना शोभा युक्त बन जाता है, तभी तो भगवान् शुकने नन्दोत्सव के प्रसङ्ग मे गोपो की शोभा का वर्णन एक ही श्लोक मे किया, किन्तु गोपियो के वर्णन मे चार श्लोक कहे। परमहस चक्रचूडामणि वीतराग नि सग सर्वत्यागी जितेन्द्रिय भगवान् शुक ने प्राकृत शृङ्गार रस की सरसता बढ़ाने के लिये ऐसा किया हो, सो तो सम्भव नही,

क्योंकि वे प्राकृत धर्मों से ऊपर उठे थे। उन्होने जो वर्णन किया वह श्रीकृष्ण प्रोत्यर्थ ही किया। भगवान् ने प्रथम ही क्षीरसागर पर ब्रह्माजी के द्वारा देवताओ को यह आदेश दिलाया था, कि "मेरी प्रसन्नता के लिये समस्त देवाङ्गनाएं भी मर्त्यलोक मे जाकर जन्म लें।" तो जो एकमात्र श्रीकृष्ण को ही प्रसन्न करने का उपक्रम कर रही हो, उनकी शोभा का जितना भी वर्णन किया जाय उतना ही न्यून है। इसीलिये गोकुल की ग्वालिनियो की शोभा का वर्णन करके अब समस्त व्रज की व्रजाङ्गनाओ की छटा की झाँकी कराते है।'

सूतजी कहते हैं— मुनियो! श्रीकृष्ण के जन्म का समाचार सुनकर केवल गोकुल की ग्वालिनियो को ही उनके दर्शनो की चटपटी लगी हो सो बात नही। समस्त व्रज मण्डल की बारी, बूढी तथा युवती समस्त स्त्रियो के मन मे भगवान् को देखने की उत्सुकता हो गयी। गाँव गाँव मे घर घर मे स्त्रियाँ नन्द-भवन को गमन करने के लिये तैयारियाँ करने लगी। वे मेवा मिठाई आदि टीके की वस्तुओ को लेकर अपने-अपने घरो से निकल पडी। उनमे सभी तरह की थी। कुछ बूढी टेढी भी थी कुछ युवती विमुग्धा थी कुछ मुग्धा बालिकाएँ भी थी। बुढियो के मन मे आज नवयौवन का सचार हो गया था इसलिये आज वे दौड रही थी। युवतियो मे कई प्रकार की थी, कुछ तो पतली छरहरी शीघ्रगामिनी थी, कुछ मोटल्ली धमधल्ली भारी शरीर की थी। शरीर पर अधिक मास चढ जाने से उन्हे चलने मे कष्ट होता था। वे पिछड जाती और कहती—'अरी वीर आनन्दी! पहिले तुम जाकर खीर न खा लोगी, हमे भी साथ लिये चलो।'

दूसरी हँसती हुई कहती—"अरी तुमने तो अपने भर्तार

की भी मुटाई अपने शरीर मे ले ली है। वे कितने दुबले पतले है तू कितनी धमधल्लो हो गयी है। लोभ का फल तो यही होता है। यह सुनकर सब हँस जाती।

जितना बुढी टेढी बुकरियाँ थी वे कहती—'अरे, छोरियो! तुम तो उड रही हो, मानो पङ्ख लग रहे हो। हमे भी साथ लेती चलो।"

उनमे से कोई हँसती हुई कहती— दादो कभी तुम भी ऐसे उडो होगी। सबका समय होता है। बुढिया को तो घर मे ही बैठकर माला सरकानी चाहिये, ऐसे अवसरो पर जाना ही न चाहिये।"

यह सुनकर एक बुढिया कहती—"बुढियाओ के मन नही होता क्या? तुम सदा ऐसी ही छैलछबीली नवेली बनी रहोगी। तुम भी तो कभी बुढिया होगी।"

इस पर एक छोटी सी—ठिगनी सी—गोल मुखवाली युवती घूँघट को उठाकर कहती—"बुढिया हो हमारी वैरिन, हम तो सब ऐसी ही नित्य किशोरी बनी रहेगी। व्रज मे रहकर भी जो स्त्री बुढिया हो अब उसके लिये मैं क्या कहूँ"

यह सुनकर सब हँस पडतीं। इस प्रकार हँसी-विनोद करती हुई जा रही थीं। अधिकाश गोपिकाएँ पैदल ही आ रही थी। उनके चरणों की धूलि से आकाश मण्डल भरा हुआ सा दीखता था, मानों उस परम पावन रज को देवगण अलक्षित भाव से स्वर्गादि लोको के लिये ले जाते हो। जो अत्यन्त ही बूढी बुकरियाँ थी उनको भी श्रीकृष्ण दर्शन की अति उत्कण्ठा बढी। वे भी गाडियो में बैठ-बैठकर नन्दभवन की ओर जा रही थी। चारो दिशाओं के पथ गोप और गोपियों से भर रहे थे। मार्ग मे गोपियो के झुण्ड मिलते, किसी गाँव के युवक देखते इस गाँव

की लडकी हमारे गाँव के गोप से विवाही है, तो ससुराल का नाता मानकर वह कोई सरसता की बात कह देता। युवतियाँ भी उससे ऐसी ही बातें कह देती, इससे रस की वृद्धि होती।"

उन आने वाली व्रजाङ्गनाओ के प्रत्यक्ष दो-दो गोल दिखाई देते। जो युवती थी, चलने मे शक्तिशालिनी थी, वे तो आगे-आगे हरिनियो की भाँति चकित दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई बढ जाती थी, बुढियाएँ थी अथवा बालिकाएँ थी, वे पीछे के गोल मे रह जाती। वे भला युवतियो की बराबर कैसे कर सकती थी।"

व्रज मे पुष्पो की तो कुछ कमी ही नही थी। जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ कमी का क्या काम है, व्रज तो रमा का क्रीडास्थल ही बन गया था। ऋतु के बिना ऋतु के सभी फूल खिल गये थे। प्रकृति के नियामक का प्रसन्नता के निमित्त ही जब व्रजाङ्गनाओ का अवतरण है, तब प्रकृति को तो उनके अनुकूल होना ही होगा। मालती, माधवी, मल्लिका, यूथिका, चम्पा, पाटल, गन्धराज तथा पारिजात आदि के पुष्पो से उन युवतियो की चोटियाँ गुथी हुई थी किसी-किसी की ऐडी तक लटकती चोटी मे छोटे-छोटे पुष्पो की मालाएँ गूँथी गयी थी, किन्ही-किन्ही के जूडो मे स्थान-स्थान पर फूल खुरसे हुए थे। वेग से चलने के कारण उनकी चोटियो मे से पुष्प गिर रहे थे, मानो देव-गण आकाश से पुष्प बरसाकर गोपाङ्गनाओ के पथ को पुष्पमय बनाने का प्रयास कर रहे हो। उनके कानो के कमनीय कनक कुडल हिल-हिलकर अव्यक्त शब्द कर रहे थे, मानो गोपियो को शीघ्र चलने को उत्साहित कर रहे हो। उनके कोमल कपोलो का स्पर्श करके सकेत कर रहे हों। कुण्डल हिल-हिलकर आगे बढ जाते, मानो कह रहे हो, कि हमे कान से पृथक् कर दो, तो हम छिन मे दौरकर श्री-कृष्ण के दर्शन कर लें। यद्यपि उन्होने अपने पीन पयोधरो को

कंचुकियों से कस रखा था, फिर भी वे हिल - हिलकर श्रेष्ठ के अङ्ग स्पर्श के लिये व्यग्रता प्रकट कर रहे थे। हार हिल-हिल कर उनको निषेध कर रहे थे, किन्तु वे उनका शासन मानने को तैयार नही थे, वे उन्हे धका देकर दूर हटा देते थे, किन्तु जैसे नायक क्रोधित हुई मानिनी नायिका के पाद-प्रहार को सहकर भी उसकी ही ओर दौडता है, उसी प्रकार ढकेले जाने पर भी हार पुनः पुनः उन्ही का स्पर्श करते। इस प्रकार उन दोनो का सम्पूर्ण पथ मे सघर्षण होता आ रहा था। करो के जडाऊ कङ्कण चूडियो की झनकार मे अपना सहयोग प्रकट कर रहे थे। जिस प्रकार टिड्डीदल एक साथ उडता है, उसी प्रकार वे सब व्रजाङ्गनाएँ मानो उड रही हो। नन्द-भवन की ओर उसी प्रकार तीव्र गति से जा रही थी, जिस प्रकार वर्षा काल की सरिताएँ समुद्र की ओर वेग से जाती हैं। वे गाती, बजाती, हँसती, खेलती किलोलें करती और एक दूसरी को ठेलती हुई जा रही थी। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग फडक रहे थे हृदय मे एक प्रकार की विचित्र मीठी-मीठी उत्सुकता उत्पन्न हो रही थी। वे अपने इष्ट की ओर अभिसार तो कर रही थी किन्तु यह अभिसार गुप्त न होकर प्रकट था, इसमे छिपाव नही, दुराव नहीं, संकोच नही, छल नही कपट नही, ईर्ष्या नही, डाह नही। यह सम्मिलित गमन था।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! झुण्ड की झुण्ड लाल, पीली, हरी, नीली, वैजयन्ती तथा पचरङ्गी चूनरियो को ओढे गोपियो को अपने घर की ओर आते देखकर नन्दजी का हृदय बाँसो उछलने लगा। उनकी आँखो मे प्रेम के अश्रु छल छलाने लगे। वे सोचने लगे—"धन्य मेरा भाग्य जो आज सभी गाँवो की गोपि-
काएँ मेरे लाला को आशीर्वाद देने [illegible] रही हैं
कहाँ थे, जो मै लाला का मुँह [illegible] रही

लग गया है। ये सब कब से आशा लगाये बैठी थी। आज सभी अपनी निधि को देखने आ रही हैं। इस प्रकार सोचकर वे मारे हर्ष के अङ्गो मे नही समाते थे। बार-बार रोहिणी जी के पास जाते थे और कहते थे—"भाभी! देखना, किसी के आदर सत्कार मे कोई कमी न हो। जिसका जैसा सत्कार होना चाहिये, उससे सौगुना करो। नारायण की कृपा से तुम्हारे घर मे किसी वस्तु की कमी तो है ही नही।'

रोहिणीजी कहती—'लाला! तुम चिन्ता मत करो। मुझे सबका ध्यान है, फिर सुनन्दा बीबी भी हैं। बडी बीबी और हम सब ही तो है।" इस प्रकार आगत गोपियो को देखकर गोप हट जाते और वे भीतर महलो मे बिना रोक टोक के उसी प्रकार भीड मे विलीन हो जाती, जिस प्रकार नदियाँ समुद्र मे जाकर विलीन हो जाती हैं।

छप्पय

ब्रजरजमहँ पदकमल परहिं पृथिवी हरपावें।
जा रजहूँ अज शम्भु चहें परि ते नहिं पावें॥
प्रकटे ब्रजमहँ नन्द लला हम सबके भरता।
मिलन चलीं जिमि जाहिं उदधितैं मिलिबे सरिता॥
यह अभिसार विचित्र अति, जामें नहि ईर्ष्या कपट।
छोंड़ि सौतिया डाह सब, जाहिं हँसति खेलति प्रकट॥

नंद-भवन में गोपियों का आनन्दोल्लास

[८४६]

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥*

(श्री भाग० १० स्क० ५ अ० १२ श्लोक)

छप्पय

यों सब मिलिकें नन्द भवनमहँ पहुँची बाला।
जहँ गुल गुल-से परे सुनमुना जसुमति लाला॥
बाँधे मुट्ठी नयन मूँदि कछु ध्यान लगावत।
चरननि रहे हिलाय मनहूँ जग-सार बतावत॥
बोलीं बुढ़ियाँ बरस ! तुम, चिरजीवो सुखतैं रहो।
वेगि बढ़ो बेटा ! बिहँसि, जसुमतिते मैयो कहो॥

वृद्धा को आशीर्वाद देने का जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी के भी छोटे बच्चे बच्चो हो, बूढे नर नारी उन्हे निःसकोच बेटा-बेटी कहेगे। लडके भी बूढे बुढियो को देखकर बाबा, दादो, माताजी कहन लगत हैं। वृद्धो को इस बात का अभिमान रहता है, कि हम बड़े हैं, बच्चे हमारे लाल्य है। कोई लडका कुछ बढ-चढकर बातें

---

* श्री शुकदेवजी कहते है—"राजन् ! नन्दभवन म पहुँचकर गोपियाँ नन्दलाल को आशीर्वाद देती हुई कहने लगी—"बालक चिरञ्जीवी हो" फिर गोपो पर किसी हल्दी मे जल और तैल मिलाकर उनके ऊपर फेंकती और उच्च स्वर से गीत गाती।"

करता है, तो बूढ़े लोग कहते हैं—"अरे भैया! हमने तुझे गोद मे लेकर खिलाया है, हमारे सामने तू नङ्गा घूमता था।" बूढ़े के लिये लडके कितने भी बढ जायँ, कितने भी उन्नत हो जायँ, वे बच्चे ही हैं। उसी पुराने नाम से पुकारेंगे, और की तो बात ही क्या भगवान् भी यदि बच्चा बनकर बूढो के बीच मे आ जायँ तो वे उन्हे भी आशीर्वाद देंगे, और चञ्चलता करने पर चपत भी लगा देंगे। वह तो उनका जन्मजात अधिकार है कोई भी क्यो न हो अपना अधिकार सरलता से नही छोड सकता।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! नन्दभवन मे आज आनन्द का सागर उमड रहा है किसी को कुछ पता नही हम कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, सभी एक अपूर्व आनन्द सुधासागर मे निमग्न है। नद-जी के छोटे बडे भाइयो की बहुओ को आज न खाने की स्मृति है न पीने की। ब्रज की जो स्त्रियाँ आती हैं, उन्हे दौडकर आसन देती हैं। पान, बीरी, इलायची, लौंग आदि से उनका स्वागत सत्कार करती हैं। उनसे मीठी मीठी बातें करती हैं। लालजी को दिखाती हैं। गोपिकाएँ आकर लालजी की आरती उतारती हैं भेंट की साम-ग्रियाँ रखती हैं। सबसे पहिला टीका उपनदजी की पत्नी लालजी की बडी ताई के घर से आया। लालजी को सर्व प्रथम वही ताई की लायी रोली अँगुली पहिराई गयी। यशोदा मया एक तो मोटी थी, दूसरे उन्होने प्रसव किया था, तीसरे, आनन्द मे विभोर बनी हुई थी, लालजी के श्रीअङ्गको देखते ही उनके नेत्रो से स्नेह का नीर बहने लगता, अत वे शैया पर सुख-पूर्वक पडी थी। बडी-बडी बूढी गोपियाँ आती तो नदरानी हाथ जोड देती और रो पडती। कोई आकर कहती—'यशोदा बधाई है। तेरे लाला क्या जाया है, जगत्‌का उजियाला है। बस इतना सुनते ही उनका कंठ रुद्ध हो जाता, नेत्रो से टप-टप करके आँसू बहने लगते, शरीर

मे रोमान्च हो जाते और सतृष्ण नेत्रो से इधर-उधर निहारने लगती। कुछ धैर्य धारण करके कहती—"मेरा काहे का है, आप सबका है। आप सबके आशीर्वाद से यह जी जाय बडा हो जाय।"

बुढियाँ कहती—"अजी, नंदरानी लाला की लाखा वर्ष की आयु हो सदा हमारी राजा बनकर रक्षा करता रहे। ब्याह हो जाय, बहू आवे, बेटा होयँ। अब तो नारायण ने कृपा की है। हमारी रानी की गोद भरी है। यह कहकर गोपियाँ लालजी की बलैया लेती, टोका चढाती, आरती करके उन पर राई नौन उतारती।"

लालजी सुनन्दा बूआ की गोदी मे थे। दाई ने देखा, यहाँ अधिकार तो मेरा है यह बीबी! मानती ही नही, अतः बोली—"सुनन्दा बीबी! लालजी को मुझे दे दो, तुम तनिक देख भाल करो देखो, महरान से चाव आयो है।"

सुनन्दा ने कहा—'तू क्या करेगी।"

गरजकर बुढिया बोली—"मैं करूँगी अपनी आमदनी! यही तो मेरी दान दक्षिणा का समय है।"

हँसकर सुनन्दा बूआ बोली—'ले, तू सोने का सुमेरु बनवा-लेना बुढिया का पेट ही नही भरता डोकरे से कह देना वह भी अब लौंठरा हो जाय।"

यह कहकर लालजी को दाई को देकर सुनन्दा बूआ वहाँ से बाहर चली गयी और गोपियो का आगत स्वागत करने लगी। दाई ने एक अत्यन्त महीन पोला रेशमी वस्त्र लालजी के श्रीमुख के ऊपर डाल रखा था, कि लालजी के मुख पर मक्खियाँ न बैठने पावें, इसलिये वस्त्र डाल दिया है, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य यह था, कि लाला को नजर न लग जाय। जिसे दर्शन कराने हो,

पहिले अपनी गहरी दक्षिणा रखा लूँ, नेग जोग ले लूँ, तब दर्शन कराऊँ।"

जो भी गोपियाँ आती वे ही कहती—'दाई दादी! तनिक लालजी का कमल मुख तो दिखा दो। तुमने तो नई बहू को तरह उसका मुख ही ढक रखा है?'

दाई कहती—"अरी, मुख ऐसे ही दिखाया जाता है। लालजी के लिये तो कुर्ता, टोपी, कठुला, काँधनी सब कुछ ले आयी, मेरे लिये कुछ भी नही लायी।"

गोपी बल देकर कहती—'लायी कैसे नही, दाई दादी! तेरे लिये तो हम तीहर लायी है, तुझे बुढिया से बहू बनाना है।"

यह सुनकर बुढिया खीजकर कहती—'जो आती हैं, वही मुझे बुढिया बुढिया कहकर खिजाती है, बनाने की बात कहकर विदाती हैं। मै कभी बनी नही क्या? ये ही नई बहू बनी है, इन्ही पर नया यौवन आया है। मानो हमारी कभी ऐसी अवस्था हुई ही नही। ये बाल मैंने धूप मे पका लिये है? कभी मेरे भी काले बाल थे। मेरा मन नही चलता, तीहर पहिनने, हार पहिनने को। हमे जो बुढिया बतावे, वे स्वय बुढिया, उनकी माँ बुढिया, दादी बुढिया, नानी बुढिया।"

इस पर कोई कहती—'अरी, दादी, बुढिया काहे को है, तू तो युवतियो के भी कान काटता है। नई तीहर पहिनकर तो तुझ पर नया यौवन आ जायगा। आजकल तरी ही पाँचो अगुली घी मे है। तेरी ही दुकान तो चेत रही है। लाला के पीछे चाहे जितना धन कमा ले।"

बुढिया कहती—कितने दिनो से तो मेरी आशा लग रही थी। अब मै किसी की सोभरि का काम करने थोडे ही जाऊँगी।'

इस पर कोई कहती—"अब तो तेरी सब कामो से मुक्ति हो

जायगी। पान चबाती रहना और उसके रस को निगलती रहना। जब लाला तेरी गोद मे आ गया, तब तुझे किस वस्तु की कमी है।"

इस प्रकार सब दाई को खरी, खोटी, टेढी, उलटी सीधी व्यङ्ग की बाते सुनाती, वह सबकी सुनकर कुछ न कुछ उत्तर देती और

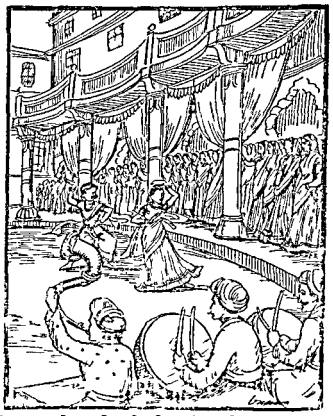

जो निछावर दक्षिणा मिलती उसे चुपके मे पीछे रख लेती। उसके समीप वस्तुओं का ढेर लग गया। इतने टीके के थाल आये, कि सुनन्दा बूआ लालजी की ताई चाची सभी थक गयी।

इतने में ही बाहर अथाई पर महराने के गोप आ गये। सब ने कहा—"हम तो लाला को देखेंगे।"

नन्द जी ने कहा—"भैया, भीतर तो लुगाइयाँ ही लुगाइयाँ भर रहीं हैं। वहाँ कैसे जाना हो सकता है?"

वे गोप बोले—"लुगाइयाँ रही आवें, वे क्या हमारे सिर पर चढ़ेगी। लाला को लुगाइयो ने ही मोल ले लिया है क्या? वे देख सकती हैं, तो हम नहीं देख सकते।"

नन्द जी बोले—"हाँ, भैया! तुम्हारी तो चूल्हे मे जड हैं। तुम्हारे लिये अथाई चौपाल से बढ़कर तो घर है। अच्छा चलो। यह कह कर वे गोपो के साथ चल दिये। लाल जी के दर्शनो की लालसा किस अभागे के हृदय मे न होगी, अतः और भी गोप पीछे लग लिये। नन्द जी मना कैसे करें। खाँसते मठारते भीतर चले, किन्तु आज उनके खाँसने मठारने को कौन सुनता है। नगाडखाने मे तूती की ध्वनि कहाँ सुनाई देती है? जैसे-तैसे वे महराने वाले गोपो को आगे करके आँगन मे पहुँचे। महराने वालो को तो किसी का सकोच है ही नही, उनकी कोई बहिन है, न कोई बूआ है। हमारे यहाँ की जो सुनन्दा आदि बूआ है, उनसे उनका हँसी विनोद का सम्बन्ध है, अतः वे बिना रोक-टोक भीतर घुस गये। नन्द जी को देख कर बहुएँ चिकों मे छिप गयी! महराने वाले तन्मय हुए लाल जी की छबि को देख रहे थे। इतने मे ही एक हँसमुख बुढ़िया-सी बोली—"छोरियो! ये नौताल वाले आये हैं ऐसे ही सूखे ही चले जायँगे क्या?"

बस, फिर क्या था। हल्दी, चूना, तेल, नारियल का जल तो भरा हुआ रखा ही था, लडकियों ने महराने वालो के ऊपर डाला, बहुओ ने नन्दबाबा तथा दूसरे गोपो के ऊपर डाला। अब तो नन्द जी को उमङ्ग चढ़ आयी। उन्होंने भी कस कर फेंटा ब॰

पिचकारी निकाली। रङ्ग कुण्डा मे भरा ही हुआ था, वे मारने लगे तक तक कर पिचकारी, स्त्रियाँ आपे से बाहर हो रही थी। दाई ने सूतिका गृह की किवाड बन्द कर दी थी, फिर भी लालजी पर कुछ छोटे पड ही गये जंगले मे से नन्दरानी निहार रही थी और मन ही मन सिहा रहा थी बार बार इच्छा होती मैं भी इस महोत्सव मे सम्मिलित हो जाऊँ, किंतु वे तो उठ नही सकती थी बडी देर तक स्त्रियाँ पुरुषो पर रङ्ग डालती रही, पुरुष भी उनके वस्त्रो का रङ्ग मे सराबोर करने लगे, तदन्तर सभी गोप निकल कर बाहर आये। बाहर सहस्रो लक्षो गोप हाथ मे दही, दूध तथा अन्यान्य गोरो को रङ्ग मे सराबोर देख कर उन सबके मन मे भी सरसता की उमंगे उठने लगी।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! कृष्णरङ्ग मे रँगी गोपियाँ मुक्त कण्ठ से सरसतापूर्ण गीतो को गाने लगी। आँगन मे तो रङ्ग की कीच हो रही थी, और वायुमण्डल मे उनके सरसतापूर्ण गीतो से रस की कीच व्याप्त हो रही थी। उस समय ब्रज मे मूर्तिमान सरसता, साकार उल्लास और प्रत्यक्ष आह्लाद दिखाई देता था। यह तो गोपियो के आनन्द के सम्बन्ध मे कहा। अब गोपो ने मिलकर श्री कृष्णजन्मोत्सव के उपलक्ष मे जैसे दधिकाँदौ किया। उसका वर्णन मै आगे करूँगा, उसे भी आप सब सावधान होकर श्रवण करे।"

छप्पय

महरानेतैं गोप लालकूँ देखन आये।
भीतर आदर सहित नन्दबाबा जब लाये॥
गोपिनि तुरतहिँ अधिक तेल में हरदी घोरी।
छिरकैं रसमहँ पगी मची भादौंमहँ होरी॥
लै पिचकारी गोपहू, फेंट बाँधि ठाढ़े भये।
रंग रस बरसे सहाई, सब रस रँगमहँ रँगि गये॥

दधिकाँदौं

[८५०]

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥
गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १३, १४ श्लोक)

छप्पय

भेरी, तुरही, चंग, मजीरा मधुर मधुर स्वर ।
ढोल, खोल, करताल, बजै बंशी वीना वर ॥
कृष्ण जन्म की मची धूम जड़ चेतन हरषे ।
कल्पवृक्ष के सुमन गगन फुलझरियाँ वरषें ॥
व्रजमंडल के गोप गन, सब मिलि दधिकाँदौं करें ।
दूध, दही, घृत उलचि घट, खाली करि पुनि-पुनि भरें ॥

उत्सव मे एक के उत्साह को देखकर दूसरे को उत्साह आता है। एक को प्रसन्न होते देखकर दूसरे प्रसन्न होते हैं। परस्पर में सब एक ही रग मे रँग जायँ, एक ही भाव मे भावित हो जायँ,

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! विश्वेश्वर अनन्त श्रीकृष्ण के व्रज मे आने पर उनके जन्म महोत्सव मे विचित्र बाजे बजने लगे। गोपगण हृष्ट मन से परस्पर म एक दूसरे पर दूध, दही तथा जल उलीचने लगे। मक्खन को एक दूसरे पर फेंककर उनके बदनो पर मलने लगे।"

तभी उत्सव की श्रीवृद्धि होती है तभी उसमे आनन्द आता है। कुछ का भाव और हो, कुछ दूसरा ही राग अलापें, तो उसमे पूर्ण रस नही आता। सभी अपनी प्रसन्नता को निर्मुक्त भाव से प्रकट करें सभी हृदय खोलकर खेलें, कृपणता का परित्याग करके उदारता के साथ आनन्दोल्लास मनावें, तभी उत्सव पूरा होता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नन्दजी जब भीतर अन्तःपुर से रग मे रगे हुए आये तथा अन्य गोप भी उसी प्रकार थे तो गोपो ने कहा— अरे, भाई ! भीतर स्त्रियाँ तो बडा उत्सव मना रही हैं, हम सब इस प्रकार गुम्म-सुम्म क्यो बैठे हैं, हमे भी कुछ करना चाहिये।" यही सब सोचकर कुछ लडको ने जाकर नन्द बाबा को पकड लिया और कहा—"बाबा ! हम तो तुझे नचावेगे।"

भीतर ही भीतर प्रसन्नता प्रकट करते हुए नन्दजी ने कहा—"अरे, बेटाओ ! तुम नाचो। मैं बूढा हो गया, मैं क्या नाचूँगा।" यह सुनकर कोई नन्दजी की ही अवस्था के गोप कहते—"बूढो के कही बच्चे होते है, जिसके बच्चा हो, वह बूढा काहे का ? हाँ भैया नचाओ-नचाओ।"

अब क्या था, अब तो लडको ने नन्दजी को पकड़ लिया। नन्दजी के भीतर तो उत्साह भर ही रहा था, उन पर तो मानो नया योवन ही आ गया हो। उन्होने कसकर फेंटा बाँधा और नाचने लगे। उनके पीछे और भी गोप नाचने लगे। बाजे बजाने-वाले ताल स्वर से बाजे बजाने लगे। लडके उछलकर नाचते हुए गाने लगे—

नन्द के आनन्द भयो, जय कन्हैयालाल की।
हाथी दीन्हे घोडा दीन्हे और दीन्ही पालकी॥ नन्द...

रत्न दीन्हे हार दीन्हे गऊ ब्याही हालकी।
कठा दीये कठुला दीये दीन्ही मुक्तामालकी ॥ नन्द ·
कडे दीये छडे दीय बिन्दी दीन्ही भालकी।
सुरमा दीन्हो दर्पण दीन्हो दीन्ही कंघी बालकी ॥ नन्द ·
बोलो जय बोलो जय जय बोलो गोपालकी।
रोहिणीनदन बल जय-जय दाऊ द्यालकी ॥ नन्द—

सबको नाचत देखकर बूढे बूढे गोप भी नाचने लगे। कोई किसी का हाथ पकडकर नाचता कोई किसी के कधे पर हाथ रख कर नाचता, बहुत से गलबैयाँ डालकर नाचते। बडी देर तक यह नृत्य होता रहा। अत मे किसी ने एक हडी दूध लाकर नद जी के सिर पर उडेल दिया। मानो "दूधनि न्हाय पूतनि फलौ" यह कहावत चरितार्थ करदी। नन्दजी को दूध मे भीगा देखकर सब हसने लगे। तब तक किसी ने लाकर दूसरे पर दूध उडेल दिया। अब तो नाच बद हो गया, यही दधिकाँदो की लीला चल पडी। दूसरा आया उसने नन्दजी क मुखपर दही लेप दिया। दही मे सनी उनकी दाढी मूँछे विचित्र दिखाई देने लगी। अब तो सभी के मुख दही से लेपे गये। वह झपटकर उसके मुख को पोत देता, वह उसके सिर से उडेल देता। किसी ने लाकर गरम किया हुआ घी ही अन्य गोपो पर उडेल दिया। अब तो गोप घरो मे घुस जाते। जो भी हाथ लगता उसे ही उठा लाते। अब अपने पराये का भेदभाव नही रहा। ये तो लघु चित्त वाले पुरुषो के विचार हैं जहाँ विश्वम्भर जगत् के एक मात्र स्वामी का जन्म हो, वहाँ भेदभाव कैसे रह सकता है। गोप घरो से जिन हडियो मे मक्खन के लौदे रखे हैं उन्हे उठा लाते और इस प्रकार तक कर मुख पर मारते, कि दातो मे मक्खन चिपक जाय। जब वे लोग

जीभ से दोनों के मक्खन को छुड़ाते, तो सब हँस पड़ते। बूढ़े बूढ़े गोपों के पोपले मुखों में सीधे नवनीत के गोले चले जाते। उनका कंठ रुद्ध हो जाता वे बार-बार अपने पोपले मुख को चलाते और माखन के लोंदे को निगल जाते, इस पर बड़ी हँसी होती। कोई पूरे लोंदे को मुख पर ही पोत देता, जिससे आँखें भौंहें दाढ़ी मूंछ सभी शुभ्र रंग के हो जाते सभी देखकर ताली पीटते, हँसते और उनका हाथ पकड़ कर इधर से उधर घुमाते। इस प्रकार वहाँ दधिकादों नवनीतकादों तथा गोरसकादों मच गयी छोटे-छोटे बच्चे दूध दही की हंडियों को ही एक दूसरे को गले में पहिनाने लगे। परस्पर में एक दूसरे के देखकर हँसने लगे।

फिर बूढ़ों में से एक बूढ़े ने कहा—"भाई, ऐसे नहीं, सब बूढ़े-बूढ़े एक ओर हो जाओ, युवक-युवक एक ओर और बच्चे सब एक ओर देखें कौन अच्छा नाचता है, कौन सुंदर गाता है।"

फिर क्या था, सभी को एक नवीन उत्साह आ गया। सबके पृथक्-पृथक् यूथ बन गये। लड़कों ने बड़े-बड़े विचित्र स्वाँग बना लिये। किसी ने काला मुख करके उस पर लाल पीली बिंदकियाँ लगा ली। किसी ने बड़ी सफेद दाढ़ी लगाली। किसी ने अपने पेट में बहुत से वस्त्र बाँधकर बड़ी तोंद बनाली और उस तोंद को हिलाते हुए लाठी के सहारे चलने लगे। बहुत से नट बनकर कलाएँ दिखाने लगे। बहुत से बंदर बन गये कोई मदारी बन गया, इस प्रकार बन्दरों को नचाने लगे। कोई काला कंबल ओढ़ कर शरीर पर काले बाल चिपका कर रीछ बन गया और हू हू करके सबकी ओर दौड़ने लगा। एक रीछ नचाने वाला बन गया। वह पूछता—"कहो रीछ बाबू ससुराल कैसे जाओगे?" तो वह अपने कंधे पर लाठी रखकर मचल-मचल कर चलने का अभिनय करता। फिर पूछता—कहो रीछ बाबू! बहू को कैसे

मनाओगे ? चरखा कैसे कातोगे ? ससुराल मे कैसे बैठोगे ? इन सब बातो को रीछ बने गोप इस ढग से दिखाते, कि अन्य सब गोप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। फिर युवक गाते नाचते विविध प्रकार बाजो को बजाकर उनकी कलाओ को प्रदर्शित करते।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! उस समय गोपो के रोम-रोम से आनन्द और उल्लास के स्रोत बह रहे थे। सभी आत्मविस्मृत से बने प्रेम मे उन्मत्त से हो रहे थे। उस समय विविध प्रकार की चेष्टाएँ दिखाकर वे हँस रहे थे, हँसा रहे थे, गा रहे थे, दूसरो से गवा रहे थे, नाच रहे थे औरो को नचा रहे थे। सब एक मन एक प्राण होकर श्रीकृष्ण जन्मरूप आनन्द सुधा का समान रूप से पान कर रहे थे। उस समय वे जगत् के सभी व्यवहारो को भूले हुए थे।"

छप्पय

मुखमहँ मक्खन मारि गोप कोई भगि जावें।
कोई चुपके आइ दही मुख में लपटावें॥
कोई दूध उड़ेलि हरषमहँ नाचैं गावें।
कोई पटकें पकरि पिछौरा पाग भिगावें॥
यों खेलत लोटत हंसत, नाचत गावत गोप सब।
घड़ी काल की सुधि न कछु, उदित भये रवि अस्त कब॥

प्रभुप्रीत्यर्थ महोत्सव

[८५१]

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥*

(श्री० भा० १० स्क० ५ अ० १५, १६ श्लो०)

छप्पय

प्रेम पुलकि व्रजराज आज सर्वस्व लुटावें ।
जो माँगे जो वस्तु ताहि सो तुरत दिवावें ॥
राव, भाट अरु कथक सूत सब पढ़िवैवारे ।
नर्तक, नट अरु भाँड़ विविध विधि बाजेवारे ॥
देत सिहावत अति मुदित, पुनि पुनि देवें पुनि कहैं ।
और लेउ सकोच नहिं, बिनु लीये कोउ न रहैं ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महामना नन्दजी गोपों को वस्त्र, अलङ्कार तथा गौओं को देते तथा सूत, मागध बन्दी और दूसरे भी विद्योपजीवी जो वहाँ आये थे सबको उनकी इच्छित वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट करते । यह सब इतना दान आदि उन्होंने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये तथा अपने पुत्र के अभ्युदय के निमित्त किया ।"

जो जिस भाव मे भवित हो जाता है उसमे उसकी लालसा अधिकाधिक बढती ही जाती है। जैसे विषयी पुरुष विषयो का सेवन करते-करते तृप्त नही होते, वैसे ही भगवद् भक्त भगवान् के चरित्रो को सुनते-सुनते उनकी रूप माधुरी का पान करते-करते कभी तृप्त नही होते। प्रगतिशील प्राणी का स्वभाव है, वह उत्तरोत्तर बढता ही जाता है। हृदय मे एक दुर्गुण आ जाय, तो वह शनैः शनैः और दुर्गुणो को आमन्त्रित करता रहेगा। जब मनुष्यो को अपना एक दुर्गुण दिखाई दे जाय, और उसे मिटाने का प्रयत्न करे, तो फिर एक के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा इस प्रकार अवगुण ही अवगुण दीखने लगते है, अन्त मे वह चिल्ला उठता है 'मोसम कौन कुटिल खल कामी।" जिन्हे देने का व्यसन हो जाता है, उनको दान देते-देते तृप्ति नही होती। जितना मिले उतना ही वे देने को लालायित बने रहते हैं। जिसकी तृप्ति हो गयी, उसकी प्रगति रुक गयी। नही तो चाहे सद्गुण हो अथवा दुर्गुण इहलौकिक भोग हो या पारलौकिक उनमे तृप्ति नही तुष्टि नही सन्तोष नही 'अलम् नही जो भी आगे आ जाय वही स्वाहा है, पुन आगे बढो। बढने को कोई सीमा नही, अन्त नही पार नही। अनन्त, असीम और अपार पथ है। जो गया सो गया "जो आवत इहि ढिंग बहुरि, जात नही रसखानि" तृप्त ही हो जाय तो रस ही समाप्त हो जाय। अतृप्ति ही तो रसोत्पादिनी है।

सूतजी कहते—'मुनियो! आप आश्चर्य न करें, कि नन्द के घर छोरा उत्पन्न होने पर इतना अपूर्व उत्साह सबके हृदय मे एक साथ जाग्रत कैसे हो गया। स्त्री पुरुष सभी एक दूसरे से नाचने गाने और आनन्द मनाने मे परस्पर इतनी प्रतिस्पर्धा क्यो करने लगे। बात यह है प्रतिक्षा ही आनन्दोत्साह की अधि-

कता में मुख्य कारण है। इष्ट वस्तु की जितनी ही अधिक प्रतीक्षा होगी, उतनी ही अधिक उत्सुकता बढेगी जितनी अधिक उत्सुकता के अनन्तर उसकी प्राप्ति होगी, उतनी ही अधिक प्रसन्नता होगी। ये गोप-गण अधिकांश मे देवगण हैं, गोपाङ्गनाएँ अधिकांश में देवाङ्गनाएँ है। असुरों के क्लेशों से क्लेशित देवगण चिरकाल से प्रभु के प्राकट्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। देव-गण तो सौन्दर्योपासक तथा ललित कला प्रिय होते ही हैं। यद्यपि यहाँ सब वेष बदले हुए हैं, फिर भी उत्सव प्रिय प्रकृति थोड़े ही बदल सकती है। भगवान् तो सबकी आत्मा हैं जीव मात्र के वे ही एक मात्र इष्ट हैं। वे किसी एक के अपने नही पराये नही। वे तो सबसे समान रूप से सम्बन्धित हैं। सबके सुहृद् हैं, प्रेष्ठ हैं। उनकी प्राप्ति पर सबको समान रूप से सुख होना स्वाभाविक ही है। सभी बूढी-बूढ़ी गोपियों के स्तनो मे दूध आ गया। सभी चाहती थी, हम ही इन्हे छाती से चिपटाकर दूध पिला दें। सभी को ऐसा प्रतीत होता था, मानों हमारे ही लाला हुआ है। सबकी दृष्टि समान रूप से लाला के अनिर्वचनीय अद्भुत अनुपम आनन पर लगी हुई थी, सभी उस घनीभूत मूर्तिमान् रूप सुधाराशि के दर्शनों से अघाती नही थी। मोद मे भरी गोपिकायें गा रही थी, नाच रही थीं। वृषभानुजी की पत्नी रानी कीर्तिदेवी भी आयी। सबने उनका अत्यधिक आदर सत्कार किया। उनकी गोद मे भी एक गोरी-गोरी छोरी थी। सब गोपिकाओं ने कहा—"रानी! तुम भी नाचो।"

कीर्तिरानी बोली—"अब मैं क्या नाचूँगी। तुमही नाच लो।"

सुनन्दा बूआ बोली—'नही रानीजी! आज तो नाचने का नेग होता है, कोई बात नही चार पैर फिरा दो, सबका मन भी रह जायगा नेग भी हो जायगा। लाओ लल्ली को मुझे देदो।"

अब कीर्तिरानी क्या करती। सचमुच आज नाचने का नेग ही होता है। जब मेरे छोरी हुई थी तब नन्दरानी कितनी देर जाकर मेरे आँगन में नाची थी। वे तो मुझसे बडी ही हैं। मै तो उनसे सब प्रकार से छोटी ही हूँ। उनके यहाँ तो मुझे नाचना ही चाहिए।"

यही सब सोचकर उन्होने अपनी भोरी-सी छोरी को सुनन्दा बीबी की गोदी मे दे दिया। और स्वय नाचने लगीं। रावल की गोपिकाएँ ढोलक मजीरा आदि बाजे बजाने लगी। कीर्ति रानी झुक-झुककर कमर को लचा-लचाकर नाचने लगी। सभी प्रेम मे विभोर हो गयी। रानी के ऐसे अपूर्व नृत्य को देखकर सब चकित-चकित दृष्टि से स्नेह और संभ्रम के साथ उनकी ओर निहारने लगी। इधर किसी काम से दाई ने सुनन्दा बूआ को पुकारा। तुरंत कीर्तिरानी को लल्ली को लिये हुए ही सोहरि के घर में गयी। लालजी दाई की गोदी मे नेत्र बद किये पड़े थे। सहसा बुआ के पैरों की छम्म-छम्म सुनकर उन्होने अपने नेत्र खोल दिये। मानों दो मुकलित कमल खिल गये हो। जैसा कि बालको का स्वभाव होता है, छोटे बालक को देखकर बडा बालक उसे पकड़ने का प्रयत्न करता है। बूआ की गोद मे से कीर्तिकुमारी खिसकने लगी। वे बार-बार बालक को ओर भोरी चितवन से निहारने लगी। बूआ ने समझा लाली को भूख लग रही है। चलूं इसे माँ के ही पास ले चलूं। यह सोचकर लाली को पुनः सम्हाल कर वे बाहर आयीं। अभी तक कीर्तिरानी नाच ही रहीं थीं। सुनन्दा ने हँसकर कहा—"रानी अब बहुत हो गया, थक जाओगे, लाली रोती है अब वह मेरी गोद में रहना नहीं चाहती। अब इसे दूध पिलाओ, यह भूखी है।"

यह सुनकर कीर्तिरानी ने नाच बद किया। उनका सम्पूर्ण

शरीर पसीने से भीग रहा था। बूआ ने अपने अंचल से उनके मुख का पसीना पोंछा और कहा—"हाय! रानी कबसे नाच रही हो।" लाली अब बूआ की गोद में किसी प्रकार रहती ही नहीं थी, रोती थी और पीछे की ओर देखती थी। तुरंत माता ने गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाया।

इस प्रकार भीतर निरंतर गोपियाँ नाच रही थीं, बाहर गोप नाच रहे थे। नचकैया के जन्म होते ही सब पर अपने आप नाचना आ गया था। सबको नचाने वाला नटराज ही जो ठहरा। नट-नटी, सूत, मागध, वन्दी तथा और भी गाने बजाने तथा कला क्रीडा दिखाने वाले आ आकर अपने-अपने कला कौशल दिखाने लगे। नन्द सबको उदारता पूर्वक धन, अन्न, वस्त्र, आभूषण, गौ, घोड़े हाथी तथा और भी वे जो वस्तु, माँगते वही देते। नन्द जी बड़े उदार चित्त के थे; फिर पुत्र पैदा होने से तो उनकी उदारता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। आज तो वे दोनो हाथो से लुटा रहे थे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! नन्दजी इतना द्रव्य इसीलिए लुटा रहे होंगे, सर्वत्र मेरी कीर्ति फैले। सब मेरे यश का गान करें।"

हँसकर सूतजी ने कहा—'नहीं, महाराज! ऐसी बात नहीं है। उन्हें यश और कीर्ति से क्या लेना। वे तो जो भी कुछ करते थे, श्रीमन्नारायण की प्रीति के ही लिये करते थे। दान, धर्म, पूजा, अनुष्ठान, देव, पितृ तथा अतिथि-पूजन करते समय वे कहते थे—"मेरे इस कर्म से सर्वान्तर्यामी श्रीविष्णु प्रसन्न हो।" वे विष्णु प्रीत्यर्थ ही सब कार्य करते थे। ये जो भी दान कर रहे थे, तो उपकार की भावना से, यहाँ यश की इच्छा से नहीं कर

रहे थे, अपना कर्तव्य समझकर श्री हरि की आराधना समझकर कर रहे थे।"

शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! भगवान् की प्रसन्नता के लिए कर रहे थे, तो वह तो नित्य ही करते थे, आज इतनी विशेषता, ऐसी अधिक उदारता क्यों ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक तो नित्य कर्म, दूसरे किसी कामना विशेष से जो किये जाते हैं, वे काम्यकर्म कहाते हैं। नित्य कर्मों को करना तो कर्तव्य ही है। जैसा सन्ध्या वन्दनादि कर्म। नैमित्तकर्म किसी पर्व महोत्सव या विशेष अवसर के निमित्त से किये जाने वाले कर्म, जैसे ग्रहण लगने पर विशेष स्नान दान आदि। नंदजी का यह कर्म नैमित्तक कर्म ही था। इसमें भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के साथ ही साथ अपने पुत्र के अभ्युदय की भी इच्छा निहित थी।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"तब तो सूतजी ! यह सकाम दान हुआ।"

सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान् के निमित्त जो भी कुछ किया जाता है, वह सकाम नहीं होता। वे तो श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ ही कार्य कर रहे थे। श्रीकृष्ण का ही तो उत्सव मना रहे थे।

शौनक जी ने कहा—"नन्दजी कुछ भगवान् थोड़े ही मानते थे वे तो पुत्र मान कर उत्सव कर रहे थे।"

सूतजी ने कहा—"नन्द जी चाहे जो समझे भगवान् तो सब समझते हैं। उन्हें कोई पुत्र मान कर पूजता है, तो सगे पुत्र बन जाते है, पति मान कर भजता है, पति बन जाते है। और सखा मान कर भजने वालों के घोड़े बन जाते हैं, उन्हें पीठ पर चढ़ा कर ढोते हैं। इसलिए भगवान् के लिये उत्सव दान, पुत्र, सत्कर्म जान में अनजान में कैसे भी किया जाय उससे उनकी ही प्राप्ति

होती है; अतः नन्दजी के सब कर्म भगवान् की भक्ति के ही निमित्त थे।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी! समझ गये अब आगे की कथा कहो।"

सूतजी बोले—"महाराज! क्या बताऊँ नन्दोत्सव के वर्णन करने को तो मेरे सहस्र मुख होते तब कहीं वर्णन करने मे सुविधा होती। मेरा एक तो मुख उसमे भी एक जिह्वा वह भी मानवीय जिह्वा कहते-कहते सूख जाती है, तनिक आचमन कर लूँ, तब आगे की कथा कहूँ।"

छप्पय

नंदराय सब करत धरत बिसरत नहिँ श्रीपति।
अद्भुत सुत तनु निरखि गई चित की चंचल गति॥
दान धर्मतैं होहिँ सुखी सुत सोचत मनमहँ।
तनय अभ्युदय सुमिरि रही आसक्ति न धनमहँ॥
याचक याचक रहे नहिँ, नंद भवनतैं लेत हैं।
पावें जो गो, रतन, धन, पुनि बनि दाता देत हैं॥

नन्दोत्सव का उपसंहार तथा लालजी की छठी

[८५२]

रोहणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥
तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥*

(श्री भग० १० स्क० ५ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

नन्द-भवनमहँ रहैं रोहणी पतितैं न्यारी ।
मलिन वसन परिधान न बेनी माँग सम्हारी ॥
किन्तु कृष्णको जन्म सुनत सजि बजिकैं विधिवत ।
आज करत सत्कार सबनिको इत उत विहरत ॥
कहैं स्वामिनी नारि नर, करि आदर आयसु चहहिँ ।
समाधान सबको करहिँ, मधुर वचन सबतैं कहहिँ ॥

एक भूपति के कुमार होने पर उसके राज्य मे कितनी प्रसन्नता मनाई जाती है, यदि जगत्पति ही स्वय कुमार बनकर अवतीर्ण

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महाभाग्यवती रोहणीजी दिव्य वस्त्र माला और कण्ठा आदि आभूषणो से विभूषित होकर तथा

हुआ हो, तो जगत् में कितनी प्रसन्नता मनाई जायगी, इसका अनुमान कौन कर सकता है। इसका अनुमान वह भले ही कर सकेगा, जो जगत् के बाहर हो जगत् मे रहने वाले तो यही कह सकते हैं, बहुत आनन्द हुआ, अत्यन्त आनन्द हुआ, सर्वत्र प्रसन्नताछा गयी। जो जितना ही उदार मना और सम्पन्न होगा, वह उतना ही बड़ा उत्सव मनावेगा।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! इस श्रीकृष्ण जन्म महोत्सव मे सबसे बड़ी विशेषता यह थी, कि इसमे आज रोहणी जी की शोभा देखने योग्य थी। वे एक प्रकार से प्रोषितभर्तृका है, अपने पति से पृथक् हैं, अतः वे एक वेणी धारण करके घर के भीतर मलिन वसन धारण किये हुए रहती थी। जैसा कि पतिव्रता का धर्म है, पति से पृथक् रहकर नाच गान न करे उत्सवो मे सम्मिलित न हो, शृंगार न करे तथा हँसी विनोद की बातें न करे इत्यादि-इत्यादि। उन सबका वे विधिवत् पालन करती थी। किन्तु आज जब उन्होने श्रीकृष्ण जन्म की बात सुनी तब से उनके नियम छूट गये। उन्होने विधिवत् शृंगार किया। नन्दजी के दिये हुए बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणो को धारण किया और घर को स्वामिनी की भाँति इधर से उधर छम्म छम्प करके घूम रहीं थी। दास दासी पूछते—"स्वामिनी जी! यह काम कैसे करें?"

नदजी द्वारा सत्कृत होकर विचर रही थी भगवान् के जन्म ग्रहण करते ही उसी दिन से नन्दजी का व्रजमडल सम्पूर्ण सम्पत्तियो से सम्पन्न हो गया। व्रज वैसे ही समृद्धिशाली है, फिर श्रीहरि का भी निवास-स्थान हो गया, इन सभी गुणों के कारण वह लक्ष्मी जी का क्रीडास्थल बन गया।"

तो वे तुरन्त बताती और कहती—"तुमसे यह काम न होगा, अमुक को भेजो।" किसी से कहती—"उसे बुला लाओ, उसके बैठने का प्रबन्ध करो, वहाँ से अमुक वस्तु उठा लाओ। व्रजराज से यह बात तुरन्त कह आओ।" सेवक सेविकाएँ उनकी समस्त आज्ञाओं का तुरन्त पालन करती। उपनन्द जी की पत्नी तथा सुनन्दा आदि सभी घर की स्त्रियाँ बात-बात के लिए पूछती—'अमुक के यहाँ से यह वस्तु आयी है, इसे कहाँ रक्खें। उनके लिये अपने यहाँ से क्या जायगा, उसे क्या दिया जाय।"

रोहणी देवी सबका यथोचित उत्तर देती, सब का समाधान करतीं, सब वस्तुओं को यथा स्थान सम्हाल कर रखती वे तन्मय होकर कार्य मे जुटी हुई थी। इधर रोहणी जी मुक्त हस्त से लुटा रही थी उधर चौपाल पर नन्द जी लुटा रहे थे।"

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! इस दान दक्षिणा की कहो सीमा भी है?"

हँस कर सूतजी बोले—'महाराज! जब सच्चिदानन्द धन आनंद कद श्रीकृष्णचन्द्र ही स्वय उत्पन्न हुए और वे असीम है, तो उनके उत्सव के दान की सीमा कैसे हो सकती है। व्रज तो रमा के क्रीडा का स्थान ही बन गया। इस प्रकार पाँच दिनो तक इसी प्रकार निरन्तर दान और महोत्सव होता रहा।"

इधर गोपियो ने बालक की रक्षा के लिए प्रसूति-गृह मे अनेक कार्य किये। यशोदा मया के भी विविध प्रकार के उपचार किये गये। सूतिका-गृह मे बालक को कोई भूत बाधा या बाल ग्रह पीडा न होने पावे इसके लिए खेर, बेर, पीलू तथा फालसे आदि की शाखाएँ गृह के द्वार पर लटका दी गयी। प्रसूति-गृह मे सफेद सरसो अरसी तथा चावल के दाने बखेरे जाते थे। प्रातः साय चावलो का बलिदान तथा मगल कर्म आदि किये जाते थे।

सुन्दर सुगंधित द्रव्यों की धूप जलायी जाती थी। रक्षा करने वाले अथर्ववेद के मंत्रों का पाठ ब्राह्मण आकर करते थे, प्रथम द्वार में लोहे का एक मूसल टेढ़ा करके लटका दिया गया था। वच, कूट, अजवाइन, हींग, सफेद सरसों, अलसी, लहसुन, तथा चावन आदि की पोटलियाँ बना-बना कर उन्हें सुन्दरता के साथ सी कर बन्दनवार की भाँति घर के उत्तर द्वार पर लटकायी गयी थीं। तनिक तनिक से नाबीजों की भाँति रंग बिरंगे वस्त्रों में ये चीजें भर कर उन्हें विधिवत् सी कर, लालजी के कंठ में भी ये वस्तुएँ पहिनायी गयी थीं। माता के हाथ में भी ये वस्तुएँ बाँधी गयी। जल का भरा घड़ा माता की शैया के नीचे सदा रखा रहता था। तेंदु की लकड़ी से सदा अग्नि प्रज्वलित रहती थी। बहुत-सी सुहागिनी स्त्रियाँ सदा उनकी सेवा में तत्पर रहतीं। मीठी-मीठी प्रसन्नता की बातें सुना-सुना कर उनके मन को प्रसन्न रखतीं। नित्य मंगल कर्म होते। झुण्ड के झुण्ड स्त्री पुरुष निरन्तर बच्चे को आशीर्वाद देने के लिए आते रहते। नित्य गोपिकाएँ सोहरि के गीत गाती बाजे बजते, वेद ध्वनि होती।

दाई यशोदा मैया के भोजनों का बड़ा ध्यान रखती। बात-बात पर कहती— यह वस्तु उन्हें भोजन को मत दो। उदर पर घी और तेल मिलाकर चुपड़ती उसे रेशमी सुन्दर कपड़े से बाँध देती। जिससे वायु विकृत न होने पावे। पतली दलिया या खिचड़ी में घी मिलाकर उसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक डालकर और मोठ का चूर्ण मिला कर खाने को देती। दूध में भी पीपल औटवा दी। फिर उसने सुनन्दा बूआ से कहा— "बीबी! सुंठीपुटपाक के लड्डू बनवा लिये जायं, तो महारानी के लिये बहुत लाभदायक होंगे।

बूआ ने पूछा—"सुंठीपुटपाक के लड्डू कैसे बनते हैं?"

दाई ने कहा—एक नग सुन्दर सोंठ का चूर्ण बना लिया जाय। फिर उस चूर्ण के दो भाग करके उन्हें एरंड के पत्तों में रख लें। आधा सेर गेहूँ का आटा ले। उसकी दो रोटी-सी बनाव। उसमें एरंड के पत्ते में बँधा सोंठ को इस प्रकार भर दे जैसे कचौड़ी में पिट्ठी भरते हैं। उनके भगा से बना ले। उन्हें जंगली गौ के कंडों में भली प्रकार सेंक, पकते सेंकते जब वे लाल सुर्ख हो जाय, तब उनमें से सोंठ को एक प्याले में निकाल ले। पुटमें पकने से इस सुठी को पुटपाक कहते, हैं चार बड़े हरड़ों को पाव-भर घी में भूनकर उनके ऊपर के छिलकों का चूर्ण करके सोंठ में मिला दे, उसमें घी का भी मिला दे पावभर मरोड़फली को कूट पीसकर उसे भी साठ में डाल दे। ढाई सेर घी तीन सेर बूरा ढाई सेर सूजी भूनकर सबको मिला दे। फिर इसमें किसमिस, गोला, पिस्ता, छुआर बादाम आदि मेवा मिलाकर पाव-पाव या आध-आध पाव के लड्डू बना दे। एक लड्डू नित्य खाना चाहिये। इससे पेट में दर्द हो, आव हो, वायु हो सब शुद्ध हो जाती है। प्रसूतिका को ऐसे लड्डू खाने चाहिये।"

यह सुनकर सुबन्दा बूआ ने तुरन्त ऐसे लड्डू बनवाये और नन्दरानी को दिये जाने लगे, फिर स्नान के अनन्तर छठी बड़ी धूम-धाम से की गयी। गोबर के सूतिय द्वार पर रखे गये। कुल के पितर पूजे गये। नाना प्रकार के पकवान् बनाकर वय माता को पूजा की गयी, जिससे वह बालक के भाग्य में अच्छी-अच्छी बात लिख दे। समस्त परिवार के गोपों को बुलाकर भोजन कराया गया, सबको सिरोपा दिया गया, फूलों की मालाएँ पहिनाई गयी, पान बीड़ी दी। इस प्रकार बड़े ही उत्साह से लालाजी की छठी के पश्चात् अब नन्दरानी उठने बैठने इधर-उधर लाला को गोद में लेकर घर में ही [illegible]

वे बालक को पलभर भी अपने से पृथक् करना नही चाहती थी। कगाल के धन की भाँति वे निरन्तर लालजी की रक्षा करती रहती। नदजी भी बार-बार महलो मे लालजी को देखने आते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब तक तो नन्दजी अपने राजा कस के कर की उपेक्षा करते रहते थे। कभी भेज दिया, कभी नही भेजा। इधर कई वर्ष से उन्होने वार्षिक कर नही भेजा था। अब लालजी हो गये हैं, अत उन्हे कस के करकी चिन्ता हुई। कस दुष्ट है ऐसा न हो वह कुपित होकर कुछ अनथ करे, अत वे अब वार्षिक कर देने की बात सोचने लगे।"

छप्पय

उत्सव ब्रजमहँ नये नारि नर नित्य मनावें।
गावत गोपी गीत ग्वाल गोधन सँग आवें॥
दूध दही की बहें नदी घृत कोउ न खाई।
मदिर मदिर भरीं मनोहर मनों मिठाई॥
केसरि कीच भरी सकल, गोकुल गाँव गलीनिमहँ।
मणि मुक्ता बिखरे फिरें, कोउ न पूछे सेंतिमहँ॥

कंस को कर देने नंदजी का मथुरा गमन

[८५३]

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं कर दातुं कुरूद्वह ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ५ अ० १९ श्लोक)

छप्पय

भई लाल की छठी राज-कर चिन्ता व्यापी ।
सोचें श्रीनजराज—कस नृप अति ई पापी ॥
वार्षिक कर नहिं जाइ करे उत्पात न दुरजन ।
छकरनिमहँ भरि दूध दही घृत चले गोप-गन ॥
गोकुल रक्षाको सकल, करि प्रबन्ध मथुरा गये ।
पुरय पुरी शोभा लखी, गोप परम हरषित भये ॥

जब तक किसी एक मे आसक्ति नही होती, तब तक तन्मयता नही होती । किसी भी वस्तु मे किसी भी व्यक्ति मे मन सर्वात्म-भाव से फँसता नही तब तक सद् असत् का यथार्थ विवेक होता नही । लोग कहते हैं—"यह दृश्य प्रपञ्च कुछ नही है । असत् है, इसमे से सत् बुद्धि हटा लो । मोह का क्षय कर दो इसमे से

* श्री शुकदेवजी कहते है—"हे कुरुकुल-तिलक राजन् ! नन्दजी गोकुल की रक्षा का भार गोपो को सौपकर कस का वार्षिक कर चुकाने के लिए मथुराजी गये ।"

चित्त को हटालो ससार मिथ्या प्रतीत होने लगेगा। बात तो सत्य है, मन तो किसी मे फँसे बिना रहेगा नही। जब मन किसी मे पूर्ण रूप से फँस जाता है। तो उसके अतिरिक्त सभी वस्तुएं उसे तुच्छ दिखायी देने लगती हैं। परमार्थ की बात छोड दो, लोक मे भी देखा गया है, जो जिसमे अत्यन्त आसक्त हो जाते हैं, वे घर द्वार, धन, ऐश्वर्य, कुटुम्ब परिवार यहाँ तक कि शरीर को भी तुच्छ समझते है और अपने इष्ट के लिए हँसते हँसते प्राणो का परित्याग कर देते हैं। तभी तो वैष्णवो का सिद्धान्त है भगवान् से कोई सम्बन्ध जोड़ लो, क्योकि बिना सम्बन्ध के आसक्ति होती नही। किसी भी सम्बन्ध से जब भगवान् मे आसक्ति हो जायगी तो, उन्हें ही हम अपना सर्वस्व समझने लगेंगे, तो चाहे घर मे रहे या वन मे, विरक्त बनके रहे अथवा गृहस्थ बनके। सब दशाओ मे हमारे सब काय उन्हा के निमित्त होंगे। चिन्ता भी करेंगे, तो उन्ही के सम्बन्ध की, कोई वस्तु चाहेंगे तो उन्ही के लिये। भगवान् के निमित्त किया हुआ काय बन्धन का हेतु नही।

श्रीसूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी के कोई सन्तान नही थी, इसलिये वे कस के राज-करकी भी चिन्ता नही करते। जब आदमी फक्कड होता है, उसे उतनी चिन्ता नही होती। सोचता है—"अकेला शरीर है, कही भी हाथ पैर से परिश्रम करके पेट भर लेंगे। जिस गृहस्थ के बाल बच्चा नही वह वास्तव मे गृहस्थ भी नही। लोग स्त्री के सम्बन्ध मे नही पूछते। यही पूछते हैं—"आपके बाल बच्चे कहाँ है? बाल गोपाल तो प्रसन्न हैं न?" स्त्री के फल बच्चे ही हैं। घर मे लड़की लडके होते हैं तो उनके आगे पीछे की सहस्रों चिन्ताएँ सिर पर लद जाती हैं। लडकी हुई, तो उसके विवाह की चिन्ता दान दहेज, छोछक,

भात और न जाने किस-किस की चिन्ता। लडका हुआ; तो उसकी पढाई लिखाई विवाह, तथा अन्यान्य सस्कारो की चिन्ता आगे के लिये उसके योग क्षेम की चिन्ता। सब चिन्ता ही चिन्ता हैं। पिता जब तक जीता है, सतान के ही लिये सोचता रहता है। सन्तान न होने पर जीवत अकर्मण्य उत्साह हीन तथा नीरस बन जाता है। नन्दजी भी सोचते थे—"हमारे आगे पीछे तो कोई है ही नही। कस बहुत करेगा, हमसे अधिकार छीन लेगा, सो छीन ले। दो हैं, किसी न किसी प्रकार गौओ की कृपा से पेट भर ही लेंगे। किन्तु अब यह बात नही है। अब तो घर मे लाला हो गया है। उसे व्रज का राजा बनाना है, किसी धनिक गोप की सुदर सी कन्या के साथ उसका विवाह करना है। उसे ऐश्वर्य शाली बनाना है। हम कोई स्वतन्त्र राजा तो हैं ही नही। कस के अधीन हैं वह जब हमारे पुत्र को युवराज स्वीकार कर लेगा, तभी वह राजा बन सकेगा। यदि वह किसी कारण से अप्रसन्न हो गया, तो हमारे पुत्र मे सैकडो त्रुटियाँ बताकर युवराज मानने से अस्वीकार भी कर सकता है। यदि मेरा इतना सुन्दर सुकुमार कुमार राजकुमार न हुआ तो मेरा जीवन वृथा है। यह सब कस की कृपा पर निर्भर है, उसे प्रसन्न रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है। यद्यपि वह दुष्ट स्वभाव का है, फिर भी अनुनय विनय और नम्रता से प्रसन्न हो हो जायगा। यह शुभ सम्वाद स्वय जाकर उसे सुनाना चाहिये। बहुत दिनो से उसका वार्षिक कर भी नही दिया गया है, इससे भी अति शीघ्र चलना चाहिये।" यही सब सोचकर उन्होने गोपो को मथुरा चलने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही गोपों ने बहुत छकड़े निकाले उनमे सुन्दर-सुन्दर नागौड़ा बैल जोते। प्राचीन काल मे यह प्रथा थी, जो

जिस वस्तु का उत्पादन करता था, उसी को राजकर में देता था अन्नादि उत्पादन करने वाले कृषक उत्पन्न हुए अन्न का षष्ठांश राजा को देते थे। इसी प्रकार गोप ग्वाल आभीर भी घृत-दूध दही के रूप में राजकर देते थे। दूध दही तो उपहार रूप में देते क्योंकि ये वस्तुएं अधिक दिन तक नहीं टिकती। कर के रूप में वे घृत ही देते थे। अतः गोपो ने ऊँटों के चर्म के बने बड़े-बड़े कुप्पों में घृत को भरा और छकडों पर लादा। दूध, दही तथा मक्खन के भी भरे पात्र छकडो मे भरे। नन्दजी को अपने पुत्र की रक्षा की बड़ी चिन्ता थी। धनुष बाण धारण करने वाले सहस्रों गोप उन्होने गोकुल की रक्षा में नियुक्त किये। उपनन्दजी के ऊपर अन्तःपुर की रक्षा का भार था। इस प्रकार सभी रक्षा के प्रबन्ध करके सबको भली-भांति समझा बुझाकर वे गोपों के सहित श्रीमथुरा पुरी की ओर चल दिये। घाट पर पहुँचकर बड़ी-बड़ी नौकाओं मे बैल और छकड़ों को पार पहुँचाया। इस प्रकार सब छकडो को उतारते-उतारते उन्हें तीसरा पहर हो गया। सबके पार होने पर नन्दजी स्वय पार हुए। फिर छकड़ों को जोतकर मथुरा की ओर चल दिये। यह भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी की बात है। मथुरा के समीप एक सुन्दर म उपवन में जल का सुपास देखकर यमुना जी के तट से कुछ हटकर उन्होंने अपने डेरे डाले। सायंकालीन कृत्य किये। भोजन तो सब गोकुल से ही साथ लाये थे भोजन करके सब सुख पूर्वक सो गये। दिन भर के थके थे, पड़ते ही नीद आ गयी। एक ही करवट में अरुणोदय हो गया, सभी ने उठकर प्रातः कालीन कृत्य किये फिर छकड़ों का साथ लिये हुए वे कस की राज सभा के द्वार पर पहुँचे। प्रहरी द्वारा उन्होंने अपने आने की सूचना कंस राय को दिलायी।

कंस ने जब गोपराज व्रजेन्द्रराज जी का आगमन सुना, तो उसने बड़े आदर के साथ उन्हें बुलवाया। नन्दजी राजकीय शिष्टाचारों का पालन करते हुए अपनी समस्त भेंटों को लेकर मथुरेश के सम्मुख उपस्थित हुए। आज भेंटों में घृत, दूध, दही, के अतिरिक्त बहुत से मणि मणिक्य भी थे। इतनी धनराशि को

देखकर कंस ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"इतनी बहुमूल्य भेंट किस कारण लाये हो गोपराज?"

विनीत भाव से नन्दजी ने कहा—"महाराजाधिराज ! इस वृद्धावस्था में मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है।"

चौंककर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कंस ने कहा—"अच्छा, आपके पुत्र हुआ है ? बड़े मङ्गल की बात है आपका पुत्र चिरंजीवी हो, अपने बन्धु बान्धवों तथा सभी प्राणियों को सुख देने वाला हो। अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, अपने प्रतिपक्षियों को परास्त करे।"

सिर झुकाकर नन्दजी ने कहा—"महाराज ! आपका आशीर्वाद सत्य हो। आपकी इसी प्रकार कृपा दृष्टि बनी रहे।"

इस प्रकार बहुत सी शिष्टाचार की बातें होती रहीं। कंस ने गोपों को कुशलता पूछी पशु सम्बन्धी रोग तो व्रज में नहीं है ? घास तो यथेष्ट है न ? गौएँ यथेष्ट दूध तो देती है, जंगली हिंसक पशुओं का उत्पात तो नहीं है ? इस प्रकार की बहुत-सी बातें पूछीं। नन्दजी ने उन सबका नम्रता के साथ उत्तर दिया और व्रज की कुशलता बतायी।

इन सब बातों में मध्याह्न काल हो गया। मध्याह्न कृत्य में विलम्ब होते देखकर कंस से अनुमति लेकर तथा भेंट उपहार और वार्षिक कर की वस्तुओं को देकर नन्दजी अपने डेरे में लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने मध्याह्न कृत्य किये। यमुना जी की रेती में सुन्दर दाल बाटी बनी। घुली हुई उड़द की गाढ़ी-गाढ़ दाल बनाई गयी, सुन्दर खस्ता बाटियाँ बनी। कुछ बाटियों को मीजकर उनका चूरमा बनाया। आधा घी मिलाकर मुठियादार लड्डू बने। उड़द की गाढ़ी दाल में आधा घी डालकर पतली बनायी। तुलसी छोड़कर नारायण का भोग लगाया। फिर आनन्द से सबने प्रसाद पाया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मथुरा की शोभा देखकर गोप मुग्ध हो गये थे। उनकी इच्छा थी दो चार दिन और रहकर यहाँ का आनन्द लूटें। इसी उद्देश्य से वे डेरा डालकर विश्राम करने लगे।"

छप्पय

दई भेंट, कर सहित रतन अगनित घृत पय धन।
पाइ अमोलक वस्तु कंस पूछत प्रसन्न मन॥
व्रजमहँ सब जन कुशल बहुत दिनमहँ कर आयो।
सकुचि कहैं—व्रजराज महरि घर लाला जायो॥
कंस कहे जुग जुग जिये, पालन सब व्रजको करे।
विजयी होवै सुत सतत, सब प्रानिनिको दुःख हरे॥

नंदजी और वसुदेवजी की भेंट

[८५४]

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथ सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥*
(श्रीभाग० १० स्क० ५ अ० ३१ श्लोक)

छप्पय

नंद दयो कर कस लौटि डेरापै आये ।
समाचार वसुदेव सुनत तुरतहिँ उठि धाये ॥
सजल नयन तनु पुलकि ललकि हिय नन्द लगाये ।
दोनों सुधि बुधि भूलि गहकि हिय उभय सटाये ॥
दई बधाई नन्दकूँ, कुशल प्रश्न पुनि पुनि करें ।
सुमिरि सुमिरि बल कृष्णकूँ, नीर नयन नीरज भरें ॥

इस ससार मे सब कुछ सुलभ है, किन्तु सुहृदा का द
दुर्लभ है। विधाता ने इस जगत् की रचना विचित्र की है। सह
की रचना अपूर्णता से की गयी है। पति-पत्नी दोनो सुन्दर दो
सरल दोना एक मन एक प्राण मिले तो गृहस्थ धर्म यहीं स
बन जाय, फिर मरकर स्वर्ग जाने की आवश्यकता ही न
किन्तु ससार को रचना तो विचित्र ढङ्ग से ब्रह्माजी ने की

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! नन्दजी से मिल भेंटकर व
देवजी कहने लगे—"आप राजा का वार्षिक कर दे ही चुके और ह
भी साक्षात्कार हो चुका, अब आपको अधिक दिन यहाँ न ठह
चाहिए। क्योंकि आजकल गोकुल मे बहुत से उत्पात हो सकते हैं।"

पति सुदर है, तो पत्नी कुरूप है। पत्नी रूपवती है तो पति भोंडा है, दोनो सुंदर हैं तो वे संतानहीन हैं। सतान भी है, तो द्रव्य का अभाव है, अटूट द्रव्य है तो उसे उपभोग करने वाला नही, किसी की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है, तो धन के लिये उसे बुद्धिहीनो का आश्रय लेना पडता है। जिनके पास अटूट धन है तो बुद्धि नही। जिनके धन बुद्धि दोनों हैं वे अत्यन्त कृपण हैं। धन व्यय करने मे उनके प्राण निकलते हैं, जो उदार है, वे पैसे-पैसे का अभाव अनुभव करते हैं। कोई खाने के लिए मर रहा है तो किसी पर इतना अधिक भोजन है, कि उसे खाने की रुचि ही नही। तोले भर भी नही पचता। किन्ही का हृदय ऐसा पत्थर का बना दिया है, कि लोग उनसे प्रेम करना चाहते हैं, वे किसी से सीधे बातें भी नही करते। कोई प्रेम के लिय तरसते है, हमसे कोई प्रेम करे, दो मीठी बातें करे, किन्तु लोग उनसे बोलते तक नही, सभी उनकी उपेक्षा करते हैं। जिनके साथ हम रहना नही चाहते, विवश होकर उनके साथ हमे रहना पडता है। जिन्हे हम पल भर के लिये पृथक करना नही चाहते। वे हमसे इतने दूर फेंक दिये जाते हैं, कि जीवन मे कभी उनसे भेंट ही नही होती। इस प्रकार न जाने ब्रह्माजी की खोपडी मे यह क्या विपरीत भावना भर गयी, कि उन्होंने सभी गडबड घुटाला कर दिया। मनुष्यो मे ऐसी विपरीतता कर दी हो सो बात नही। सर्वत्र उनकी ऐसी ही बडी-बडी भूल दिखाई देती है। मनुष्यो के पूँछ नही बनायी कितनी भारी भूल है। नेत्रा को माथे मे बना दिया। जीभ मे नेत्र होने चाहिय थे। कानो को व्यर्थ इतना लम्बा बना दिया गले मे ही छेद कर देते और देखिये वट, पीपल पाकर कितने बडे-बडे वृक्ष बनाये इनमे फल लगते हैं तनिक-तनिक से। मनुष्यो के काम भी नही आते, बड़े स्वादिष्ट आम की भाँति मीठे फल होते तो क्या पूछना

है। नीम पर फल भी लगाये तो कडवे। बबूर पर व्यर्थ मे काँटे लगा दिये, ईख की लकडी कितनी मीठी होती है, उस पर यदि फल लगता तो कितना मीठा होता, उसमे फल नही। चन्दन की लकडी कितनी सुगन्धि वाली होती है, उस पर यदि फूल लगता तो कितना सुगन्धित होता, उसमे फूल का अभाव है। सुवर्ण कितना सुदर है उसमे सुगधि और होती तो कितना आनन्द आता। उसे गन्धहीन बना दिया। इन सब बातो को स्मरण करके किसी नीतिकार न कहा है, ब्रह्माजी को भाग्यवश कोई बुद्धिमान मन्त्री नही मिला। शीघ्रता मे बूढे बाबा को जो कुछ सूझा वही बना दिया। अब जो एक बार अपने हाथ से उलटा सीधा बन गया, उसे मिटाने मे मोह होता है। अच्छा और सब त्रुटियाँ तो सही भी जा सकती हैं। क्षम्य भी मानी जा सकती है, किन्तु सुहृद् जनो को पृथक् करके जो वियोग की रचना ब्रह्माजी ने की है, वह तो असह्य है। जिस प्रेम मे वियोगजन्य दुख नहीं ऐसा प्रेम देखने मे नही आता। दो प्रेमियो को दूर फेंककर जो बूढे बाबा अपने चारो मुखो से हँसते रहते हैं वह जघन्य व्यापार है। जब दो प्रेमी मिलत हैं तो कैसा सुख होता है। ब्रह्माजी ने प्रेमियो का नित्य मिलन क्यो नही बनाया। संभव है वियोग से प्रेम निखरकर चमक उठता होगा। चिरकाल की प्रतीक्षा के पश्चात् के मिलन मे अत्यधिक सुख होता होगा, मिलन की मिठास को बढाने के लिय सभव है ऐसा किया हो। नही तो जिनके एक नही चार-चार मुख हैं। परम पुरातन अनुभवी अब ऐसी बेतुकी भूल क्यो करते। जितनी ही अधिक प्रतीक्षा के पश्चात् प्रिय का मिलन होगा उसमे उतना ही अधिक आनन्द आवेगा। दूर रहने पर जितनी उत्कठा बढती है, समीप रहने पर उतनी अनुभव नही होती।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो व्रजराज नन्दजी अपने डेरे पर आकर भोजन करके विश्राम करने लगे। इधर नन्दजी के आगमन का शुभ समाचार आनक दुदुभि श्रीवसुदेव जी ने श्रवण किया। सुनते ही उनके रोम-राम खिल उठे। प्रिय दर्शन का अवसर प्राप्त होने की आशा से किस सहृदय पुरुष का मुख कमल न खिल उठेगा। वसुदेव जी अपनी उत्सुकता को रोक न सके। उन्हें क्षण-क्षण पल-पल भारी हो गया। वे नन्दजी से मिलने को व्याकुल हो उठे। नन्दजी के दर्शन होंगे अरन लाल के कुशल समाचार प्राप्त होंगे। इन बातों को स्मरण करते ही उनके रोमाञ्च हो गये। वे चुपके-से अकेले ही अलक्षित भाव से किसी गली से चल दिये। नन्द जी एक उपवन में छकड़े के नीचे आसन बिछाये लेट रहे थे। पहरे पर हाथ में धनुष बाण धारण किये हुये गोप खड़े थे। वसुदेव जी को देखकर एक गोप दौड़ा-दौड़ा व्रजराज के समीप गया और शीघ्रता से बोला—'बाबा! वसुदेव जी पधारे हैं।"

वसुदेव जी का नाम सुनते ही नन्दजी घबड़ा कर उठ पड़े। इतने में ही वसुदेव जी आ गये। दोनों हृदय से हृदय सटाकर प्रेम पूर्वक मिले। दोनों के ही शरीरों में रोमाञ्च हो रहे थे, दोनों के ही नेत्रों से झर-झर प्रेमाश्रु झर रहे थे, दोनों के ही कंठ रुद्ध हो रहे थे। बड़ी देर तक शरीर की सुधि भूले हुए एक दूसरे को हृदय से सटाये रहे।

कुछ काल के पश्चात् उन्हें अपनी शरीर की सुधि आयी। नंद-जी ने बड़े आदर से वसुदेव जी को अपने समीप बिठाया। मृतक शरीर में प्राण आने पर प्राणियों को जितनी प्रसन्नता होती है उससे सहस्रगुणी प्रसन्नता वसुदेव जी के दर्शनों से नंदजी को हुई और इसी प्रकार वसुदेव जी को भी। दोनों के कुशल कारण कंठ रुद्ध

होने के कारण स्तब्ध ही बैठे रहे। वसुदेव जी को अपनी सन्तान की कुशलता जानने की उत्सुकता थी, अतः उन्होंने धैर्य धारण करके रुक-रुक कर कहना आरंभ किया।

वसुदेव जी सर्व प्रथम पुत्र पैदा होने के उपलक्ष में बधाई देते हुए बोले—"नन्द जी! जब से मैंने सुना है, कि आपको इस वृद्धावस्था मे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है, तब से मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नही रहा है। भगवान् की यह परम कृपा है, नही तो इस अवस्था में आपके सन्तान होगी ऐसी किसी को भी आशा नही थी। आप दोनो ही पति-पत्नी वृद्ध हो चले थे। अब तक आपके कोई सन्तान भी नही थी, इस समय पुत्र प्राप्त होने पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ।"

यह सुनकर विनीत भाव से नन्दजी ने कहा—"मेरे तो ऐसे कोई पुण्य दीखते नही थे। यह सब आप सबकी कृपा का फल है। मेरा काहे का है। आपका ही बच्चा है। आप सब के आशीर्वाद से जी जायगा तो ब्रज का नाम चलावेगा। इधर बहुत दिन से आपके दर्शन नही हुए थे। सोचा था—'एक पन्थ दो काज' चलकर कंस का कर भी दे आवें और आपके दर्शन भी कर आवें। हम सब आपके घर जाने की बात सोच ही रहे थे, कि स्वयं आपने ही कृपा की, दर्शन हो गये। आपके दर्शनों की उत्कंठा थी, आज आपको देखकर चित्त कितना प्रसन्न हुआ, इसे शब्दों द्वारा व्यक्त करने की मुझमे सामर्थ नही है।"

वसुदेव जी बोले—"भाईजी! संसार मे सुहृद् जनो का मिलना यही अत्यन्त कठिन है। सभी वस्तुएँ प्रयत्न करने से सरलता-पूर्वक प्राप्त हो सकती है, किन्तु पृथक् हुए प्रेमियो का सम्मिलन बड़े सौभाग्य की बात है। सुहृदयो का एक दूसरे से पृथक् होना मरण के समान है। सम्भव है अब भेंट हो न हो। यदि सौभाग्य

से विछुरे वन्धु पुनः मिल गये। तो समझो मानों पुनर्जन्म हो गया।"

नन्दजी ने कहा—"क्या बतावें भाईजी! इच्छा तो बडी होती है, सदा आपके समीप ही रहें, किन्तु परिस्थितियो से विवश होने के कारण मन की बात मन मे ही रह जाती है। सदा साथ रहने की बात दूर रही, दर्शन भी नही कर पाते।"

आह भरकर वसुदेवजी ने कहा—"भाईजी! इस ससार का चक्र ही ऐसा है। मैं कब चाहता हूँ आपसे पृथक् रहकर जीवन बिताऊँ, किन्तु हमारे चाहने से होता ही क्या है। ब्रह्मा बाबा ने सबके भाग्य भिन्न-भिन्न बनाये हैं। प्रेम भी सबसे नही होता, यह भी सस्कारो पर निर्भर है, बहुत से व्यक्ति जीवन भर साथ रहते हैं, प्रेम नही होता है। बहुतो को एक बार देखने से ही प्रेम हो जाता है, हृदय बलपूर्वक उनकी ओर खिच जाता है। जीवन मे एक बार भाग्य से मिल जाते है, क्योकि सब वस्तुओ पर सबका नाम लिखा है। अन्न के दाने-दाने पर जल के कण-कण पर प्रत्येक की छाप लगी है। जब एक स्थान के अन्न जल पर एक ही समय भोगने की छाप का सयोग होता है, जो अनेक व्यक्ति मिल जाते हैं। जब वह सयोग समाप्त हो जाता है, तो इच्छा न रहने पर भी बिछुडना पडता है। दो तिनके नदी के प्रवाह मे बहते-बहते मिल जाते हैं, कुछ दूर साथ चलते हैं, फिर कोई लहर आती है दोनो को पृथक् कर देती है। कभी फिर सयोग होता है तो फिर मिल जाते हैं, कभी नही भी मिलते। नौका में बहुत से साथ हो जाते है, पार होने पर सब अपने-अपने गाँवो पर चले जाते हैं। ध्याऊ पर बहुत से एक साथ मिलकर पानी पीते हैं, हँसते खेलते हैं दोपहरी ढली, कि सब अपना-अपना मार्ग पकड लेते हैं। वायु में उडकर बहुत से पेडो की पत्तियाँ

मिल जाती हैं, पुनः आँधी आयी पृथक् हो जाती हैं। उत्सव, मेले ठेले, विवाह पर्व, सस्कार प्रीति भोज तथा अन्यान्य समारोहों पर मनुष्य एकत्रित होते हैं, फिर सब बिछुड़ जाते है। कोई चाहे हम सदा साथ ही बने रहे, तो यह असम्भव है, क्योंकि सभी के प्रारब्ध कर्मों मे कुछ न कुछ भिन्नता होती है। प्रायः देखा गया है, सभी प्रेमी साथ नही रहते, उन्हे वियोग मे तड़प-तड़पकर ही जीवन बिताना पड़ता है।

नन्दजी बोले—'वसुदेवजी ! आप सत्य कहते हैं। यह ससार ऐसा ही है। हम कब चाहते हैं, कस के अधीन रहे, किन्तु रहना पड़ता है। आपको हम अपनी आँखो मे रखना चाहते हैं, किन्तु साथ रहना तो पृथक् रहा खुलकर बातें भी नही कर सकते। इन सब बातो से हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे, कि यह जीव अवश है, किसी के नचाने पर नाचता है, किसी के सकेत पर कार्य करता है।"

वसुदेव जी ने कहा—"छोड़ो इन बातों को प्रारब्ध पुरुषार्थ का पुराना झगड़ा है। अच्छा, यह बताइये आज-कल आप अपने बन्धु-बान्धव तथा अन्यान्य गोपों के सहित जिस विशाल वन में रहते हैं उसमे जल का तो सुपास है न ? मनुष्यों तथा पशुओ के लिये जल पर्याप्त है न ? गौओं के चरने के लिये जगल पर्याप्त है न ? उसमे यथेष्ट बड़ी-बड़ी घास तो है। 'वृक्ष लता पत्रो का बाहुल्य है ? क्योंकि वृक्ष पुरुषों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वे जीवन की समस्त वस्तुओ को देते हैं। तुम्हारी गौएँ तथा अन्यान्य पशु तो निरोग है न ? पशु सम्बन्धी रोग तो नही है ?"

वसुदेव जी के इतने प्रश्नों को एक साथ सुनकर नन्दजी सरलता के साथ कहने लगे—"सब आपकी कृपा है। हम बिन

महावन गोकुल मे रहते हैं, उसमें पर्याप्त घास है। यमुना जी जो हमारे निकट ही बहती हैं। तट पर ही हमारे गोष्ठ है, अतः जल की तो कुछ कमी ही नही। पशु सब अच्छी प्रकार है, गोप-गण आनन्द से चैन की बन्शी बजाते हैं' किलोलें करते हैं।"

वसुदेव जी ने पूछा—"और आपके बड़े भाई छोटे भाई उनके बच्चे सब कुशल से तो हैं ? हाँ, एक हमारा भी पुत्र अपनी माता के सहित आपके यहाँ रहता है। अब तक न मैंने उसे देखा न उसने मुझे देखा। आपने तथा नन्दरानी ने ही उसका पालन-पोषण किया है। वह तो आप दोनो को ही अपना माता-पिता मानता होगा।"

नन्दजी बोले—"हाँ, भाईजी ! भाभी रोहिणी अच्छी प्रकार हैं उनका बच्चा भी अच्छा है। अब तक तो वह कुछ अन्यमनस्क सा रहता था, जबसे उसका एक जोटिया आ गया है, तबसे हँसता है, खेलता है, किलकारियाँ मारता है। आप किसी प्रकार की उसके सम्बन्ध मे चिन्ता न करें, जैसा वह आपका पुत्र है, वैसा ही मेरा है।"

वसुदेव जी ने अत्यन्त ही स्नेह भरित हृदय से मार्मिक वाणी मे कहा—"हाँ, भाईजी ! यह कुछ कहने की बात थोड़े ही है। आपका ही तो वह पुत्र है। आपका ही धर्म और धन तो सफल है, जिन शास्त्र विहित धर्म, अर्थ और काम के द्वारा अपने आत्मीयो को सुहृद् सम्बन्धियो को सुख मिले, तो सफल है नही जो धन केवल भूमि मे ही गाडने को हो, अधर्म से उपार्जित किया गया हो, न तो उसके द्वारा दान पुण्य किया गया हो, और न अपने तथा कुटुम्बियो के सुखोपभोग में व्यय किया गया, तो वह धन धर्म विरुद्ध है। इसी प्रकार जिस धर्म से लोक कल्याण हो, देवता पितर प्रसन्न होते हों, वह धर्म तो यथार्थ धर्म है इसके

विपरीति बिना विधि के केवल यश प्राप्ति और नाम के लिये जो धम किया हो, वह धर्म न होकर धर्माभास है, दम्भ है, दिखावट है। जो कामभोग-परलोक को भूलकर-केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिये ही किया गया हो वह अधर्म है। आपके तो तीनो ही सार्थक है। आप समस्त धर्म भी आत्मीयों के सुख के निमित्त करते हैं। आपका धन भी दान पुण्य मे ही व्यय होता है। आप काम का भी धर्मानुकूल ही सेवन करते है, अत' आप धन्य हैं। हम तो इस कस के अधीन होकर अपने त्रिवर्ग नष्ट कर चूके, न तो अपने बन्धु बान्धवो को सुख पहुँचा सकते हैं, न स्वय ही खुल कर धर्म-कार्य कर सकते हैं। जिस त्रिवर्ग से अपने बन्धुजनो को क्लेश हो वह व्यथ है, उससे कोई लाभ नहीं।"

आह भरकर नन्दजी ने कहा—"क्या बतावें वसुदेव जी! परिस्थिति विवश कर देती है, नही आप तो उदार बडे हैं, धर्म प्राण हैं। इस दुष्ट कस ने सब गुड गोबर कर दिया। यह कितना पापी है, इसके पाप का घडा भरता भी तो नही। इतने जघन्य पाप करके फल फूल रहा है। देखिये, दुष्ट ने देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए तुम्हारे कितने नन्हें नन्हे भोले भाले सद्य.जात शिशुओ का जन्म होते ही निर्दयता-पूर्वक मार डाला। सुना है अन्त मे एक सबसे छोटी कन्या बची थी। उस पर भी दुष्ट ने दया नही की। स्त्री जाति पर तो क्रूर क्रूर से भी कृपा करते हैं। स्त्रियो को तो सभी अवध्या मानते हैं, इस खल ने इसका भी विचार नही किया, उसे भी मारकर स्वर्ग पठा दिया।"

वसुदेव जी ने सरलता के साथ कहा—'व्रजराज! अब किसे दोष द। कौन किसे सुख-दुख दे सकता है, सभी स्वकर्म सूत्र में आबद्ध हैं। बेचारा कस क्या कर सकता है, यह तो सब हमारे भाग्य का ही द प है।"

नन्दजी ने कहा—"हाँ भैयाजी! बात तो ऐसी ही है, नि:सदेह मनुष्यो का सुख दुख भाग्य पर ही अवलम्बित है। मनुष्य जो अनेको आश्रय खोजता है, असख्यो दु ख निवृत्ति के उपाय करता है, वे एक भी काम नही आते उसका एक मात्र सच्चा आश्रय तो भाग्य ही है। "भाग्य फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्।" मनुष्यो को मोह तभी होता है जब वह दूसरो को अपने सुख दुख का कारण समझता है, इसने मुझे बडा सुख दिया, मेरा बडा भारी काम कर दिया, यह मेरा मित्र है, इसने मेरा अमुक कार्य बिगाड दिया, मुझे अमुक-अमुक क्लेश दिये, यह मेरा शत्रु है, इन विचारो मे ही मन के अनुकूल प्रतीत होने वाले के प्रति राग, प्रतिकूल प्रतीत होने वाले के प्रति द्वेष होना स्वाभाविक है। राग और द्वेष ही ससार-बन्धन को दृढ करने वाले हैं। जो प्रत्येक कर्म को अपने भाग्य का ही कारण मानता है, ऐसा विवेकी पुरुष कभी मोहग्रस्त नही होता। आप विवेकी हैं तभी तो इतने कष्टो को बडे धैर्य के साथ सहते रहे और दु ख देने वाले कस के प्रति भी द्वेष रहित बने रहे। उसे दोषी न मान कर आप अपने भाग्य को ही दोष देते हैं। यह उचित ही है, आप जैसे ज्ञानीविवेकी के अनुरूप ही ये भाव हैं।"

वसुदेव जी ने कहा—'अच्छा ये बातें तो हो चुकी। यह बताइए आप राजा को अपना कर दे आये? अब तो वहाँ कोई कार्य शेष नही है।"

नन्दजी ने कहा—"हाँ, वार्षिक कर हम दे चुके। कोषाध्यक्ष से लिखा पढ़ी भी करा ली। वहाँ तो अब कोई कार्य शेष नही रहा।"

वसुदेवजी ने कहा—"ये गोप जिस प्रकार निश्चिन्त हुए इधर

उधर घूम रहे हैं, इससे तो अभी ऐसा प्रतीत होता है, आप अभी कुछ दिन यहाँ और रहना चाहते हैं ?"

नन्दजी ने कहा—"मुझे आपसे मिलना तो अत्यावश्यक था। सोचा था, एक दो दिन रहकर आपसे भी भेंट कर लूँ। इनमे बहुत-से गोप ऐसे है, जो पहिले ही पहिले मथुरा आये हैं। इनकी इच्छा थी, दो चार दिन रहकर यहाँ के सब घाट, बाट, मन्दिर तथा सुन्दर-सुन्दर स्थान देखें।"

वसुदेव जी ने कहा—"देखिये यह समय हाट-बाट देखने भालने तथा मनोविनोद का नही है। आपके मुख्य काम दो ही थे, राजा को कर देना और मुझसे भेंट करना। सो दोनो ही काम हो चुके, अब आपका यहाँ अधिक दिन रहना उचित नही, क्योकि गोकुल मे आज-कल बहुत उत्पात होने की सभावना है।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! नन्द बाबा की तो स्वयं अपने लाला को छोडकर मथुरा मे रहने की इच्छा नही थी किन्तु गोपो के आग्रह से तथा वसुदेव जी से भेंट करने के लोभ से उन्होने दो एक दिन रहना स्वीकार कर लिया था, किन्तु जब वसुदेव जी ने गोकुल मे उत्पात होने की बात कही, तब तो उनका हृदय धडकने लगा। उन्होंने गोपो से कहा—"अभी तुरन्त छकडो को जोड़ो, हम अभी गोकुल चलेंगे।"

यह सुन कर शौनक जी बोले—"सूतजी! वसुदेव जी को क्या पता था, कि व्रज मे उपद्रव होने वाले हैं, क्या वे ज्योतिषी थे ?"

हँसकर सूतजी बोले—"अजी महाराज ज्योतिषी न भी हो, तो भी प्रेम मे सदा अनिष्ट की शका लगी ही रहती है। फिर चोर का हृदय सदा शकित ही बना रहता है, ऐसा न हो हमारी चोरी खुल जाय। जबसे वसुदेव जी अपने पुत्र को नन्दजी के

गोकुल मे छोड़ आये हैं, तब से वे अपनी किसी भी चेष्टा से यह प्रकट होने देना नही चाहते, कि हमारा नन्दजी से कोई प्रेम का सम्बन्ध है। वे दिखाना चाहते है, कि नन्दजी से हमारा कोई सम्बन्ध ही नही, इसीलिये वे छिपकर अकेले मिलने आये।

आजकल उनकी कस सभा मे जाने पर कोई रोक-टोक भी नही थी। वे सभा मे चले जाते और इसी बात की टोह लगाते रहते, कि मेरे विरुद्ध कोई षडयन्त्र तो नही हो रहा है, किसी प्रकार मेरी बात तो नही खुल गयी है। वैसे तो वे कस के सभी असुर प्रकृति के मन्त्रियो से डरते रहते थे, किन्तु पूतना से उन्हे बड़ा डर था। वह बडी भयकर प्रकृति की थी। उन्हे यह बात विदित हो गयी थी, कि आज कल छोटे-छोटे बच्चो के वध का कार्यक्रम कार्यान्वित हो रहा है। यह दुष्टा पूतना घर-घर मे जा जाकर छोटे-छोटे बच्चो को विष मिश्रित पय पिलाकर परलोक पठाती है। नित्य व इस बात का गुप्त रूप से पता लगाते रहते, कि आज यह किधर जाने वाली है। किसी के द्वारा रात्रि मे ही उन्होने सुन रखा था, कि कल यह व्रज के बालको को मारने नन्दजी के गोष्ठ मे जायगी। वे गुप्त रीति से किसी सेवक को नन्दजी के यहाँ भेजने ही वाले थे, उसी समय सुना नन्दजी वार्षिक कर देने आये हैं।" वे सब के सम्मुख तो उनसे मिलना नही चाहते थे। टोह लगाते रहे कर देकर ये कब अपने डेरे पर लौटते हैं। जब वे लौट गये, तो तुरन्त वसुदेव जी उनसे गुप्त मार्ग से जाकर मिले। जब वसुदेव जी ने व्रज मे उत्पात वाली बात कही तब तो नन्दजी अपने सभी साथी गोपो को साथ लेकर तुरन्त गोकुल की ओर चलने को प्रस्तुत हुए। चलते समय दोनो के नेत्र सजल थे, हृदय से हृदय सटाकर दोनो मिले। अन्य गोपो ने वसुदेव जी को प्रणाम किया। इस प्रकार उनको आज्ञा लेकर

गोप बैलो से जुते छकडो पर चढकर गोकुल की ओर चल दिये और वसुदेवजी उदास मन से अपने घर लौट आये।"

छप्पय

बोले श्रीवसुदेव दयो कर भेंट भई अब।
अधिक रहें नहिँ यहाँ काज सम्पन्न भये सब॥
व्रजमहँ नव उत्पात कौन-से कब का आवें।
तातैं अब अविलम्ब आप गोकुलकूँ जावें॥
राम-कृष्णमहँ मन फस्यो, नन्द-हृदय शंका भई।
तुरतहिँ गोकुल गमनकी, गोपनिकूँ आज्ञा दई॥